अल-रिसाला
मई-जून 2024

अल-रिसाला

मई-जून 2024

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

हज्जतुल विदा का सबक़	3
रमी-ए-जिमार	7
इमाम राज़ी का क़िस्सा	9
बुढ़ापे का सबक़	10
मुताला-ए-हदीस	11
तजर्बात-ए-मारिफ़त	31
डायरी : 1986	47
दौर-ए-ज़वाल की अलामत	64
छोटा आग़ाज़	65

हज्जतुल विदा का सबक़

हज्जतुल विदा 10 हिजरी में अदा किया गया। इस हज को हज्जतुल विदा इसलिए कहा जाता है कि इस हज के दौरान रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अहले-ईमान को विदा कहा था। आपने कहा था कि शायद इस साल के बाद आइंदा इस जगह तुमसे मेरी मुलाक़ात न हो सकेगी और इसके तक़रीबन दो माह बाद मदीना में आपकी वफ़ात हो गई। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का यह हज मुख़्तलिफ़ पहलुओं से अहले-ईमान को गाइड करता है।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने जब हज के सफ़र का इरादा किया, तो इसकी ख़बर अरब में फैल गई और लोग मदीना आना शुरू हो गए। आप 25 ज़िलक़ादा 10 हिजरी को मदीना से मक्का के लिए रवाना हुए। रास्ते में भी लोग इस क़ाफ़िले में शरीक होते रहे। सहाबी-ए-रसूल हज़रत जाबिर कहते हैं कि मेरी निगाह जहाँ तक जाती थी, मुझे हर तरफ़ इंसान-ही-इंसान दिखाई देते थे। मक्का पहुँचकर यह मजमा तक़रीबन सवा लाख हो गया। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अपनी 'अल-क़सवा' नामी ऊँटनी पर सवार थे। यह एक उम्दा क़िस्म की तेज़ रफ़्तार ऊँटनी थी। ताहम उस वक़्त उसके ऊपर जो कज़ावा (camel's saddle) बँधा हुआ था, उसकी क़ीमत चार दिरहम से ज़्यादा न थी। गोया ज़रूरत की हद तक आला मेयार; लेकिन जहाँ ज़रूरत की हद ख़त्म हो जाए, वहाँ सिर्फ़ सादगी।

आप 4 ज़िलहिज्जा को मक्का पहुँचे। मक्का पहुँचने के बाद सबसे पहले आप हरम में दाख़िल हुए और आपने काबा का तवाफ़ किया और यह क़ुरआनी दुआ की—

"ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत में भी भलाई दे और हमें आग के अज़ाब से बचा।"

(क़ुरआन, 2:201)

इंसान एक लम्हा भी भलाई और ख़ैर से महरूम होकर ज़िंदगी नहीं गुज़ार सकता है। इसलिए हर औरत और हर मर्द को चाहिए कि वह दुनिया और आख़िरत दोनों के लिए ख़ैर का तलबगार बना रहे और इसके लिए दुआ करे।

8 ज़िलहिज्जा को आप अपने तमाम असहाब के साथ मिना गए। रवानगी के वक़्त कोई तवाफ़ नहीं किया। उस दिन ज़ुहर, अस्र, मग़रिब और इशा की नमाज़ें आपने मिना में पढ़ीं और रात को वहीं क़ियाम किया। सुबह 9 ज़िलहिज्जा को सूरज निकलने के बाद आप अरफ़ा की तरफ़ रवाना हुए। आप निमरा (वादी-ए-अरना) के एक ख़ेमे में उतरे। सहाबा में से कोई लब्बैक पुकारता था और कोई तकबीर कहता था। क़ाबिल-ए-ग़ौर बात यह है कि कोई एक-दूसरे पर ऐतराज़ नहीं करता था। इसमें यह सबक़ है कि शरीअत में अगर किसी मौक़े पर एक से ज़्यादा चीज़ों के दरमियान किसी एक को इख़्तियार करने की इजाज़त हो, तो इसमें से कोई भी चीज़ इख़्तियार की जा सकती है। इस ऑप्शनल इंतिख़ाब (optional choice) को अफ़ज़ल और ग़ैर-अफ़ज़ल के नाम पर नज़ा का ज़रिया नहीं बनाना चाहिए।

जब आप अरफ़ा से मुज़दलिफ़ा की तरफ़ रवाना हुए। आपके साथ उसामा बिन ज़ैद आपके पीछे बैठे हुए थे और आप रास्तेभर तल्बिया करते रहे। मुज़दलिफ़ा पहुँचने तक यह सिलसिला जारी रहा। आपने देखा कि रास्ते में कुछ लोग तेज़ चल रहे हैं, तो आपने ऐसा करने से मना किया। आपने कहा—

"लोगो! सुकून और इत्मीनान के साथ चलो। दौड़ना कोई सवाब की बात नहीं।"

(सुनन अल-कुब्रा लिल बैहक़ी, हदीस नंबर 9483)

इसी तरह आप ज़िंदगी के तमाम मामलों में अदम-ए-उजलत और आसानी को इख़्तियार करने की तालीम दिया करते थे।

हज़रत उसामा बिन शुरीक कहते हैं कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम मिना में थे, तो लोग आपके पास सवाल पूछने के लिए आते थे। कोई शख़्स कहता कि ऐ ख़ुदा के रसूल, मैंने तवाफ़ से पहले सई (सफ़ा और मरवा के बीच सात बार दौड़ना) कर ली। कोई कहता कि मैंने रमी-ए-जिमार से पहले हलक़ (पुरुषों के लिए सिर मुँड़वाना) करवा लिया। किसी ने कहा कि मैंने पहले क़ुर्बानी की और इसके बाद रमी किया। इसी तरह लोग मुख़्तलिफ़ मसाइल पूछते रहे। आपने इस क़िस्म के सवालात के जवाब में फ़रमाया—

لاَ حَرَجَ،لاَ حَرَجَ.

कोई नुक़सान की बात नहीं, कोई नुक़सान की बात नहीं।

एक और रिवायत में है कि आपने कहा—

"नुक़सान की बात तो यह है कि कोई आदमी अपने भाई को बेइज़्ज़त करे, ऐसा ही शख़्स ज़ालिम है। उसी ने घाटे वाला काम किया और वही हलाक हुआ।"

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 2015)

यह सिर्फ़ हज का मामला नहीं है, बल्कि यही सारे दीन की स्पिरिट है। एक मर्तबा चंद आराबी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास आए और उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से पूछा—

"क्या फ़लाँ काम करने में मेरे लिए कोई नुक़सान की बात है, फ़लाँ काम को करने में कोई नुक़सान है। आपने उनसे कहा— अल्लाह के बंदो, अल्लाह ने मुश्किल को दूर कर दिया है, सिवा यह कि कोई इंसान अपने भाई की बेईज़्ज़ती करे, तो यही नुक़सान की बात है।" (सहीह इब्न हिबान, हदीस नंबर 6061)

इसलिए एक इंसान को अपने भाई के ख़िलाफ़ किसी भी इक़्दाम से पहले बहुत ज़्यादा सोचना चाहिए।

हज्जतुल विदा का ख़ुतबा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की आख़िरी अहम-तरीन तक़रीर है। आपने यह ख़ुतबा 9 ज़िलहिज्जा 10 हिजरी को अरफ़ात के मैदान में दिया था। हज्जतुल विदा गोया ज़माना-ए-नबुव्वत का सबसे बड़ा इस्लामी इज्तिमा था। इस मौक़े पर तक़रीबन सवा लाख असहाब-ए-रसूल जमा थे। इसमें आपने उन तमाम बातों का आख़िरी तौर पर ऐलान कर दिया, जिसके लिए आप रसूल बनाकर भेजे गए थे।

इस ख़ुतबे में आपने जिन बातों का ऐलान फ़रमाया, उनमें से यह भी था— तुम्हारे ख़ून और तुम्हारे माल और तुम्हारी इज़्ज़तें एक-दूसरे के लिए इसी तरह क़यामत तक के लिए क़ाबिल-ए-एहतराम हैं, जिस तरह तुम्हारा यह दीन, तुम्हारा यह महीना और तुम्हारा यह शहर क़ाबिल-ए-एहतराम है। फिर फ़रमाया कि मेरी बात सुनो और इसके मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारो। ख़बरदार! ज़ुल्म न करना। किसी अरबी को किसी अजमी पर फ़ज़ीलत नहीं और किसी अजमी को किसी अरबी पर फ़ज़ीलत नहीं और किसी काले को किसी सफ़ेद पर फ़ज़ीलत नहीं और किसी सफ़ेद को किसी काले पर फ़ज़ीलत नहीं। फ़ज़ीलत का मेयार सिर्फ़ तक़्वे पर है। तुम लोग औरतों के मामले में ख़ुदा से डरो। तुमने उन्हें अल्लाह की अमानत के तौर पर हासिल किया है। इस ख़ुतबे में यह भी बताया गया कि ईमान का तक़ाज़ा यह है कि मुसलमानों के अंदर अमानत की अदायगी का एहसास पैदा हो। एक और अहम बात,

जो आपने इस ख़ुतबे में बताई, वह यह थी कि जो लोग भी यहाँ मौजूद हैं, वे मेरी बातों को उन लोगों तक पहुँचाएँ, जो यहाँ मौजूद नहीं।

(सहीह अल-बुखारी, हदीस नंबर 67)

यह जैसे आपने अपने मिशन के तसलसुल (continuation) को बाक़ी रखने का हुक्म दिया था। दूसरे अलफ़ाज़ में, इसका मतलब यह था कि जिस तरह मैंने तुम लोगों को ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाया है, उसी तरह तुम लोगों को भी यह नसीहत करता हूँ कि तुम लोग नस्ल-दर-नस्ल इंसानों में ख़ुदा के पैग़ाम को पहुँचाने का अमल जारी रखना।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का यह ख़ुतबा जैसे एक ज़िंदा पुकार है। वही मुसलमान हक़ीक़ी मायनों में ईमान वाला है, जो हज की इस पैग़ंबराना नसीहत को सुने और उसकी पूरी ज़िंदगी इस हाल में गुज़रे कि यह ख़ुतबा उसके लिए ईमान, तक़वे और इंसानी ख़ैर-ख़्वाही में इज़ाफ़े का ज़रिया बन गया हो।

—डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम

(इस मज़मून की तैयारी में मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताब हक़ीक़त-ए-हज से मदद ली गई है)

रमी-ए-जिमार

रमी-ए-जिमार का लफ़्ज़ी मतलब है— कंकरी से मारना। रमी-ए-जिमार या रमी हज का एक अमल है। मुसलमान दौरान-ए-हज जमरात के मक़ाम पर तीन अलामती शैतानों को कंकरी मारते हैं। यह हज का एक रुक्न है। दस, ग्यारह और बारह ज़िलहिज्जा को यह अमल किया जाता है, इसमें हर हाजी पर लाज़िम है कि तीन शैतानों को सात-सात कंकरी तरतीबवार मारे। यह अमल इस्लाम में नबी इब्राहीम अलैहिस्सलाम की सुन्नत के तौर पर जारी है।

रमी-ए-जिमार की हैसियत पहले भी अलामती (symbolic) थी और आज भी इसकी हैसियत अलामती है। रमी-ए-जिमार की हक़ीक़त यह है कि जब किसी इस्लामी अमल के वक़्त शैतान आदमी के दिल में वसवसा डाले, शैतान आदमी को इस्लामी अमल से बाज़ रखने की कोशिश करे, तो इंसान इस वसवसे को जान ले। वह नए इरादे के साथ अपने इस्लामी अमल को जारी रखने का अज़्म करे। रमी-ए-जिमार कोई माद्दी वाक़या नहीं है, बल्कि वह अपने इरादे को ज़्यादा क़वी करने का एक अलामती तरीक़ा है। इसी हक़ीक़त को क़ुरआन की एक आयत में इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—

إِنَّ الَّذِينَ اتَّقَوْا إِذَا مَسَّهُمْ طَائِفٌ مِنَ الشَّيْطَانِ تَذَكَّرُوا فَإِذَا هُمْ مُبْصِرُونَ.

"जो लोग डर रखते हैं, जब कभी शैतान के असर से कोई बुरा ख़्याल उन्हें छू जाता है, तो वे फ़ौरन चौंक पड़ते हैं और फिर उसी वक़्त उन्हें सूझ आ जाती है।" (क़ुरआन, 7:201)

मौजूदा दुनिया में कोई शख़्स नफ़्स और शैतान के हमलों से ख़ाली नहीं रह सकता। ऐसे मौक़े पर जो चीज़ आदमी को बचाती है, वह सिर्फ़ अल्लाह का डर है। अल्लाह का डर आदमी को बेहद हस्सास बना देता है। यही हस्सासियत मौजूदा इम्तिहान की दुनिया में आदमी की सबसे बड़ी ढाल है। जब भी आदमी के अंदर कोई ग़लत ख़्याल आता है या किसी क़िस्म की मनफ़ी नफ़्सियात उभरती है, तो उसकी हस्सासियत फ़ौरन उसे बता देती है कि वह फिसल गया है। एक लम्हे की ग़फ़लत के बाद उसकी आँख खुल जाती है और वह अल्लाह से माफ़ी माँगते हुए दोबारा अपने को दुरुस्त कर लेता है— हस्सासियत आदमी की सबसे बड़ी मुहाफ़िज़ है, जबकि बेहिसी आदमी को शैतान के मुक़ाबले में ग़ैर-महफ़ूज़ बना देती है।

इमाम राज़ी का क़िस्सा

इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी 1150 में रे (ईरान) में पैदा हुए और 1210 में हेरात (अफ़ग़ानिस्तान) में उनकी वफ़ात हुई। किताबों में इमाम राज़ी की तरफ़ मंसूब एक वाक़या इस तरह बयान किया जाता है कि इमाम राज़ी ने ख़ुदा के वजूद पर 101 दलीलें क़ायम कर रखी थीं, लेकिन उनकी वफ़ात के मौक़े पर शैतान एक बुज़ुर्ग आदमी की सूरत में आया। उसने कहा— ज़रा यह तो बताओ कि ख़ुदा को किस तरह पहचानते हो। इमाम साहब ने एक दलील दी, शैतान ने तोड़ दी; दूसरी दी, वह भी तोड़ दी; तीसरी दलील दी, वह भी तोड़ दी। इमाम साहब ने नज़अ के वक़्त ख़ुदा को मानने और पहचानने की एक सौ एक दलीलें पेश कीं, शैतान ने सब तोड़ दीं।

ख़्वाजा नजमुद्दीन कबरी इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी के पीर हैं। ख़्वाजा नजमुद्दीन ने कश्फ़ के ज़रिये जाना कि शैतान इमाम राज़ी पर नज़अ के वक़्त हमलावर है। ख़्वाजा साहब ने बज़रिये कश्फ वहीं से कहा— राज़ी तो चरा नहीं गोई कि मन ख़ुदा रा बला दलील मी शनासम यानी "तू यह क्यों नहीं कहता है कि मैं ख़ुदा को बग़ैर दलील मानता हूँ।" इमाम फ़ख़रुद्दीन राज़ी ने जब अपने पीर की आवाज़ सुनी, तो फ़ौरन कहा— "शैतान, मैं ख़ुदा को बग़ैर दलील मानता हूँ।"

(इमाम राज़ी, अब्दुस्सलाम नदवी, सफ़्हा 8)

इसका मतलब यह नहीं है कि इमाम राज़ी के पास या किसी इंसान के पास ख़ुदा के वजूद के लिए कोई दलील नहीं है, बल्कि इसका मतलब यह है कि हर मंतिक़ी दलील का एक जवाब मौजूद होता है। इसलिए आदमी को चाहिए कि वह ख़ुदा के वजूद के बारे में इतना ग़ौर करे कि उसे वज्दान (intuition) की सतह पर ख़ालिक़ के वजूद पर यक़ीन हो जाए।

मुझ पर यह तजुर्बा गुज़रा। मैंने इस पर बहुत ज़्यादा ग़ौर किया। मैंने अपने आपसे कहा— ख़ुदा को मानना बज़ाहिर अजीब है, मगर ख़ुदा को न मानना इससे ज़्यादा अजीब है। मैं जब ख़ुदा को मानता हूँ, तो मैं ज़्यादा अजीब के मुक़ाबले में कम अजीब को तरजीह देता हूँ। मेरा यह जवाब वज्दान पर मबनी था।

बुढ़ापे का सबक़

फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़, इंसान के लिए मुक़द्दर है कि वह बचपन और जवानी से गुज़रकर बुढ़ापे के दौर में पहुँचे। जो आदमी बुढ़ापे की उम्र तक पहुँचता है, उसे मालूम है कि बुढ़ापा क्या चीज़ है। बुढ़ापा ज़ोफ़ (कमज़ोरी) का तजुर्बा है। ज़ोफ़ की हालत क्या चीज़ है, इसका तजुर्बा आदमी को बुढ़ापे की उम्र में होता है। गाँव की एक ख़ातून ने अपनी देहाती ज़बान में कहा था— "इस अँगूठे को दबाऊँ, तो भी दर्द; उस अँगूठे को दबाऊँ, तो भी दर्द।"

इंसान के लिए सबसे ज़्यादा नाक़ाबिल-ए-बरदाश्त तजुर्बा दर्द का तजुर्बा है। इंसान एक ज़ईफ़ मख़्लूक़ है। अपने इस ज़ोफ़ की बिना पर इंसान दर्द (sorrow) को बरदाश्त नहीं कर पाता। बुढ़ापे का यह तजुर्बा इसलिए पेश आता है कि आदमी दुनिया की तकलीफ़ का तजुर्बा उठाकर आख़िरत की अबदी तकलीफ़ को महसूस करे, इसीलिए क़ुरआन में बताया गया है कि इंसान जब जन्नत में पहुँचेगा, तो वह कहेगा—

الْحَمْدُ لِلَّهِ الَّذِي أَذْهَبَ عَنَّا الْحَزَنَ إِنَّ رَبَّنَا لَغَفُورٌ شَكُورٌ.

"शुक्र है अल्लाह का, जिसने हमसे ग़म को दूर किया। बेशक हमारा रब माफ़ करने वाला, क़द्र करने वाला है।"

(क़ुरआन, 35:34)

एक हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ में आई है—

عَنْ أَبِي بَكْرَةَ، أَنَّ رَجُلاً قَالَ: يَا رَسُولَ اللهِ أَيُّ النَّاسِ خَيْرٌ، قَالَ: مَنْ طَالَ عُمُرُهُ، وَحَسُنَ عَمَلُهُ، قَالَ: فَأَيُّ النَّاسِ شَرٌّ؟ قَالَ: مَنْ طَالَ عُمُرُهُ وَسَاءَ عَمَلُهُ.

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से एक आदमी ने दरयाफ़्त किया— "ऐ अल्लाह के रसूल, कौन आदमी सबसे बेहतर है?" आपने फ़रमाया— "जिसकी उम्र लंबी हो और जिसके अमल अच्छे हों।" उसने फिर पूछा— "कौन आदमी सबसे बुरा है?" आपने फ़रमाया— "जिसकी उम्र लंबी हो, लेकिन उसके अमल बुरे हों।"

(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2330)

बुढ़ापा गोया एक क़िस्म का जबर (compulsion) है। बुढ़ापे का मतलब यह है कि अब तक अगर न कर सके, तो अब से कर लो। अगर तुमने जवानी को खो दिया है, तो अपने आपको इससे बचाओ कि बुढ़ापा भी तुमसे खो जाए।

मुताला-ए-हदीस

शरह मिश्कात अल-मसाबीह (हदीस नंबर 125-145)

बराअ बिन आज़िब रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"जब क़ब्र में अहले-ईमान से सवाल किया जाता है, तो वह गवाही देता है कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और यह कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। यही मतलब है क़ुरआन के इस बयान का कि अल्लाह ईमान वालों को एक पक्की बात से

दुनिया और आख़िरत में मज़बूत करता है (क़ुरआन, 14:27)। एक और रिवायत के मुताबिक़ नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि यह आयत अज़ाब-ए-क़ब्र के बाब में नाज़िल हुई। उससे कहा जाएगा कि तुम्हारा रब कौन है, तो वह कहेगा कि मेरा रब अल्लाह है और मेरे नबी मुहम्मद हैं।"

(मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1369; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 73)

तशरीह : आदमी जब मरता है, तो वह अपने जिस्मानी वजूद को इसी दुनिया में छोड़ देता है, सिर्फ़ अपने रूहानी वजूद के साथ अगली दुनिया में दाख़िल होता है। जहाँ उसे एक नया और बेहतर जिस्म अता किया जाएगा। जिस आदमी ने अपने रूहानी वजूद को क़ौल-ए-साबित यानी शक और कन्फ़्यूज़न से ख़ाली ईमान पर मज़बूत किया हो, वह इस बात का हक़दार होगा कि अल्लाह उसे अगली दुनिया में अपनी ख़ुसूसी रहमत से साबित-क़दमी अता फ़रमाए, ताकि वह फ़रिश्तों के हर सवाल का दुरुस्त जवाब दे सके।

अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि नबी अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"बंदा जब क़ब्र के अंदर रख दिया जाता है और उसके साथ आने वाले लोग वापस जाने लगते हैं, तो वह उनके जूतों की आवाज़ को सुनता है। फिर उसके पास दो फ़रिश्ते आते हैं और उसे बिठा देते हैं और फिर उससे पूछते हैं कि तुम इस शख़्स (मुहम्मद) के बारे में क्या कहते थे? पस जो मोमिन है, वह कहेगा कि मैं गवाही देता हूँ कि वे अल्लाह के बंदे और उसके रसूल हैं। फिर उससे कहा जाएगा कि तुम देखो, वह दोज़ख़ में तुम्हारा ठिकाना

था। उसे बदलकर अल्लाह ने तुम्हारा यह ठिकाना जन्नत में कर दिया है। चुनाँचे वह बंदा इन दोनों ठिकानों को एक साथ देखता है और जब मुनाफ़िक़ और काफ़िर से कहा जाएगा कि तुम इस शख़्स (मुहम्मद) के बारे में क्या कहते थे? तब वह कहेगा कि मैं नहीं जानता। मैं वही कहता था, जैसे लोग कहते थे। उससे कहा जाएगा कि न तुमने जाना, न तुमने पढ़ा। फिर उसे लोहे के हथौड़ों से मारा जाता है। चुनाँचे वह ऐसी आवाज़ से चीख़ता है, जिसे इंसान और जिन्नात के सिवा सब सुनते हैं।"

(मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1338; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2870)

तशरीह : मैं नहीं जानता। मैं तो वही कहता था, जो लोग कहते थे (لَا أَدْرِي كُنْتُ أَقُولُ مَا يَقُولُ النَّاسُ) ये अलफ़ाज़ बताते हैं कि मुनाफ़िक और काफ़िर का दीन वही होता है, जो अवाम का दीन हो। ऐसे लोगों का कंसर्न (concern) यह नहीं होता कि वे हक़ को जानें और उसे इख़्तियार करें। उनका सारा कंसर्न यह होता है कि वे लोगों के दरमियान बाइज़्ज़त और कामयाब हों। इसलिए वे दीन के नाम पर उन चीज़ों को इख़्तियार करते हैं, जो अवाम के अंदर दीन के नाम पर राइज हों। चुनाँचे वे अपने आपको अवाम की पसंद पर ढाल लेते हैं।

इसके बरअक्स मोमिन का कंसर्न हक़ की तलाश होती है। वह अल्लाह की तौफ़ीक़ से दीन की बराह-ए-रास्त मारिफ़त हासिल करता है और उसके मुताबिक़ अपनी ज़िंदगी की तामीर व तश्कील करता है। यही लोग हैं, जो ख़ुदा के यहाँ इज़्ज़त पाएँगे, ख़्वाह दुनिया वालों ने उन्हें बेइज़्ज़त समझ लिया हो।

अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "तुममें से कोई शख़्स जब मरता है, तो उसे सुबह और शाम उसका ठिकाना दिखाया जाता है। अगर वह जन्नती होता है, तो जन्नतियों का ठिकाना और अगर वह दोज़ख़ी होता है, तो दोज़ख़ियों का ठिकाना। फिर कहा जाता है कि यही है तुम्हारा ठिकाना, यहाँ तक कि क़यामत के दिन तुम्हें उठाकर वहाँ पहुँचा दिया जाएगा।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1379)

तशरीह : इस हदीस में मौत के बाद की जिस क़ैफ़ियत का ज़िक्र है, उसे इंतज़ार की हालत से ताबीर किया जा सकता है। मुजरिम के लिए सज़ा से पहले इंतज़ार का लम्हा एक क़िस्म की सज़ा है। इसे क़ुरआन (2:167) में हसरत (regret) से ताबीर किया गया है यानी इस बात का शदीद एहसास कि आह! कैसा क़ीमती मौक़ा था, जो उसने ग़फ़लत में खो दिया। इसी तरह अल्लाह के नेक बंदों के लिए जन्नत में दाख़िले से पहले इंतज़ार का लम्हा एक क़िस्म का इनाम है।

आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि उनके पास एक यहूदी औरत आई। उसने क़ब्र के अज़ाब का ज़िक्र किया। फिर उसने उनसे कहा कि अल्लाह तुम्हें क़ब्र के अज़ाब से बचाए। फिर आइशा ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से क़ब्र के अज़ाब के बारे में सवाल किया। आपने फ़रमाया कि हाँ, क़ब्र का अज़ाब बरहक़ है। आइशा कहती हैं कि इसके बाद मैंने देखा कि जब भी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम नमाज़ पढ़ते, तो आप ज़रूर क़ब्र के अज़ाब से अल्लाह की पनाह माँगते।

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 586)

तशरीह : क़ब्र के अज़ाब से मुराद मौत के बाद का अज़ाब है, न कि मक़ामी मअनों में ज़मीन के उस गड्ढे का अज़ाब, जहाँ आदमी को दफ़न किया गया है।

ज़ैद बिन साबित रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अपने ख़च्चर पर सवार होकर बनू नज्जार के बाग़ से गुज़र रहे थे। हम आपके साथ थे कि अचानक आपका ख़च्चर बिदक गया और इस तरह बिदका, जैसे आपको गिरा देगा। उस समय वहाँ पाँच या छः क़ब्रें नज़र आईं। आपने पूछा कि इन क़ब्रों को कोई जानता है? एक शख़्स ने कहा कि हाँ, मैं जानता हूँ। आपने कहा कि इनकी मौत कब हुई? उन्होंने कहा कि शिर्क की हालत में। आपने कहा कि ये लोग अपनी क़ब्रों में आज़माए जा रहे हैं। अगर मुझे यह अंदेशा न होता कि तुम लोग दफ़न करना छोड़ दोगे, तो मैं अल्लाह से दुआ करता कि वह आवाज़ें तुम्हें सुना दे, जो मुझे सुनाई दे रही हैं। इसके बाद आपने अपना रुख़ हमारी तरफ़ करके फ़रमाया: आग के अज़ाब से अल्लाह की पनाह माँगो। सहाबा ने कहा कि हम आग के अज़ाब से अल्लाह की पनाह माँगते हैं। फिर आपने फ़रमाया—

> “खुले हुए फ़ितनों से और छिपे हुए फ़ितनों से अल्लाह की पनाह माँगो। सहाबा ने कहा कि हम हर ज़ाहिरी और बातीनी फ़ितने से अल्लाह की पनाह माँगते हैं। फिर आपने फ़रमाया कि दज्जाल के फ़ितने से अल्लाह की पनाह माँगो। सहाबा ने कहा कि हम दज्जाल के फ़ितने से अल्लाह की पनाह माँगते हैं।”
>
> (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2867)

तशरीह : यह एक ग़ैबी तजुर्बा है, जो अल्लाह ने एक मख़्सूस वक़्त पर इसलिए कराया, ताकि यह अहले-ईमान के लिए नसीहत हो

और वे मौत से पहले की ज़िंदगी में मौत के बाद की ज़िंदगी के लिए तैयारी में ज़्यादा-से-ज़्यादा एहतमाम करें।

फ़ितनों से पनाह माँगना किस इंसान के लिए फ़ायदेमंद है? यह उस इंसान के लिए फ़ायदेमंद है, जो अपने अंदर सेल्फ़ करेक्शन (self-correction) के अमल को जारी करे। सेल्फ़ करेक्शन का काम कोई दूसरा शख़्स नहीं कर सकता। यह काम हर आदमी को ख़ुद करना पड़ता है। हर औरत और मर्द का पहला फ़र्ज़ है कि वह अपना मुहासिबा (introspection) करे। वह ढूँढ-ढूँढकर अपने अंदर से हर ग़ैर-रब्बानी आइटम को निकाले, जो पैदाइशी तौर पर उसके अंदर मौजूद न थी, लेकिन बाद में वह माहौल के असर से उसकी शख़्सियत का हिस्सा बन गए। जब कोई शख़्स संजीदगी के साथ अपनी डी-कंडीशनिंग करेगा, तो उसके बाद अपने आप ऐसा होगा कि आदमी की फ़ितरी शख़्सियत पाक होकर सामने आ जाएगी। दुनिया के फ़ितने से पाक शख़्सियत का दूसरा नाम मुज़क्का शख़्सियत है।

अबू हरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> “मुर्दा जब क़ब्र में रख दिया जाता है, तो उसके पास काले और नीली आँखों वाले दो फ़रिश्ते आते हैं, जिनमें से एक को मुनकिर कहा जाता है और दूसरे को नकीर कहा जाता है। फिर दोनों फ़रिश्ते सवाल करते हैं कि तुम इस शख़्स के बारे में क्या कहते थे? फिर मुर्दा अगर मोमिन होता है, तो जवाब देता है कि वे अल्लाह के बंदे और उसके रसूल है। मैं इस बात की गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और यह कि मुहम्मद अल्लाह के बंदे और उसके रसूल हैं। फ़रिश्ते कहते हैं

कि हमें पता था कि तुम यही कहोगे। इसके बाद उसकी क़ब्र लंबाई और चौड़ाई में सत्तर-सत्तर गज़ कुशादा कर दी जाती है और उसके अंदर रोशनी कर दी जाती है। फिर उससे कहा जाता है कि सो जाओ। वह कहता है कि मैं वापस जाकर घरवालों को इसकी इत्तिला दे आऊँ। वे कहते हैं कि तुम उस दूल्हे की तरह सो जाओ, जिसे उसके क़रीबी लोगों में से वही जगाते हैं, जो उसे सबसे ज़्यादा महबूब है, यहाँ तक कि अल्लाह उसे उसकी ख़्वाब-गाह से उठाए और मुर्दा अगर मुनाफ़िक़ होता है, तो वह इस तरह जवाब देता है कि इस शख़्स के बारे में जो बात दूसरे लोगों को कहते हुए मैं सुना करता था, वही मैं कह दिया करता था, मैं और कुछ नहीं जानता। फ़रिश्ते कहते हैं कि हम जानते थे कि तुम यही कहोगे। इसके बाद ज़मीन को हुक्म दिया जाता है कि इस मुर्दे के ऊपर दोनों तरफ़ से मिल जा। चुनाँचे ज़मीन उसके ऊपर इस तरह मिल जाती है कि उसकी दाएँ पसलियाँ और बाईं पसलियाँ एक-दूसरे के अंदर घुस जाती हैं और उसे इसी तरह बराबर अज़ाब दिया जाता है, यहाँ तक कि अल्लाह उसे उस जगह से उठाए।" (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 1071)

तशरीह : इस हदीस में मौत के बाद पेश आने वाले मामले को तमसील की ज़बान (symbolic language) में बयान किया गया है। इस क़िस्म की हदीसों को समझने के लिए तमसीली उस्लूब-ए-बयान के मामले को सामने रखना बहुत ज़रूरी है।

मुनाफ़िक़ का जवाब कि दूसरों को जो कुछ कहते हुए सुना, वही मैंने कह दिया (سَمِعت النَّاس يَقُولُونَ فَقُلْتُ مِثْلَهُ), मुनाफ़िक़ की नफ़्सियात को बताता है। मोमिन के दीन का सरचाश्मा हक़ की मारिफ़त होता है। इसके बरअक्स मुनाफ़िक़ का मामला यह होता है कि दूसरों को वह जिस तरीक़े पर चलते हुए देखता है, उसी को वह भी इख़्तियार

कर लेता है। मोमिन के सामने ख़ुदा की रज़ा होती है और मुनाफ़िक़ के सामने अवाम की रज़ा। अवाम-पसंद बोली बोलने वाले लोग बहुत जल्द अवाम में मक़बूलियत हासिल कर लेते हैं, मगर आख़िरत के एतिबार से यह सिर्फ़ हलाकत है, इसके सिवा और कुछ नहीं। दुनियावी स्टेज पर अवाम-पसंद बोली बोलने वाले लोग बहुत जल्द अवाम में मुमताज़ मुक़ाम हासिल कर लेते हैं, लेकिन आख़िरत की रब्बानी स्टेज पर यक़ीनन उन्हें कोई जगह मिलने वाली नहीं।

बराअ बिन आज़िब रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "मौत के बाद आदमी के पास दो फ़रिश्ते आते हैं। वे उसे बिठाकर उससे कहते हैं कि तुम्हारा रब कौन है? वह कहता है कि मेरा रब अल्लाह है। फिर फ़रिश्ते पूछते हैं कि बताओ, तुम्हारा दीन क्या है? वह कहता है कि मेरा दीन इस्लाम है। फिर फ़रिश्ते सवाल करते हैं कि बताओ, यह कौन है, जिसे तुम्हारे दरमियान भेजा गया था? वह कहता है कि ये अल्लाह के रसूल हैं। फ़रिश्ते पूछते हैं कि यह बात तुम्हें किसने बताई? वह कहता है कि मैंने अल्लाह की किताब पढ़ी, तो मैं उस पर ईमान लाया और इसकी तस्दीक़ की। यही मतलब है क़ुरआन के इस इरशाद का—अल्लाह ईमान वालों को एक पक्की बात से दुनिया और आख़िरत में मज़बूत करता है (14:27)। फिर आपने फ़रमाया कि एक पुकारने वाला आसमान से पुकारता है कि मेरे बंदे ने सच कहा, इसलिए तुम उसके लिए जन्नत का बिस्तर बिछा दो, उसे जन्नत का लिबास पहना दो और उसके लिए जन्नत की तरफ़ एक दरवाज़ा खोल दो। चुनाँचे उसके

लिए जन्नत की तरफ़ का दरवाज़ा खोल दिया जाता है और आपने फ़रमाया कि फिर उसकी तरफ़ जन्नत की हवाएँ और जन्नत की ख़ुशबुएँ आती हैं और उसमें उसकी नज़र पहुँचने तक कुशादगी कर दी जाती है। इसके बाद आपने काफ़िर के मरने का ज़िक्र किया और फ़रमाया कि उसके जिस्म में उसकी रूह लौटा दी जाती है और दो फ़रिश्ते उसके पास आकर उसे बैठाते हैं और सवाल करते हैं कि बताओ, तुम्हारा रब कौन है? वह कहता है कि हाय! मैं नहीं जानता। फिर फ़रिश्ते पूछते हैं कि बताओ, तुम्हारा दीन क्या है? वह कहता है कि हाय! मैं नहीं जानता। तब एक पुकारने वाला आसमान से पुकारता है कि उसने झूठ कहा। तुम उसके लिए आग का बिस्तर बिछा दो, उसे आग का लिबास पहना दो और उसके लिए दोज़ख़ की तरफ़ एक दरवाज़ा खोल दो। फिर उसके लिए दोज़ख़ की तरफ़ एक दरवाज़ा खोल दिया जाता है, जिससे उसकी तरफ़ दोज़ख़ की गर्म और बदबूदार हवाएँ आती रहती हैं। आपने फ़रमाया कि फिर उस पर उसकी क़ब्र तंग कर दी जाती है, यहाँ तक कि उसकी पसलियाँ एक-दूसरे में घुस जाती हैं और फिर उसके ऊपर एक अंधा और बहरा फ़रिश्ता मुसल्लत कर दिया जाता है, जिसके पास लोहे का एक गदा होता है कि अगर उसे पहाड़ पर मारा जाए, तो पहाड़ मिट्टी हो जाए। वह फ़रिश्ता उस गदे से उसे इस तरह मारता है कि इस मार की आवाज़ मशरिक़ और मग़रिब के दरमियान जिन्न और इंसान के सिवा हर चीज़ सुनती है। वह मिट्टी के ढेर में तब्दील हो जाता है और उसकी रूह फिर उसके जिस्म में लौटा दी जाती है।”

(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 18534; सुनन अबू दाऊद नंबर 4753)

तशरीह : इस हदीस में आख़िरत के एक नामालूम वाक़ये को दुनिया की मालूम ज़बान में बयान किया गया है। इसका मतलब यह है कि मौत के बाद आख़िरत की दुनिया में आदमी के साथ जो मामला पेश आएगा, वह गोया कि वैसा ही एक मामला होगा, जैसे किसी के साथ मौजूदा दुनिया में मज़कूरा क़िस्म के मामले का पेश आना। हदीस की यह बात मुताशाबिहात (doubts) की ज़बान में बयान की गई है, न कि मुहक़मात (clear words) की ज़बान में।

हदीस में है कि सवाल-जवाब के वक़्त मोमिन कहेगा कि मैंने ख़ुदा की किताब पढ़ी और उस पर ईमान लाया और उसकी तस्दीक़ की (قَرَأْتُ كِتَابَ اللهِ فَآمَنْتُ بِهِ وَصَدَّقْتُ)। इसके बरअक्स ग़ैर-मोमिन का जवाब होगा कि मैं नहीं जानता (لَا أَدْرِي)। एक और रिवायत में ये अलफ़ाज़ आए हैं—

> ''दूसरों को जो कुछ कहते हुए सुना, वही मैंने भी कहा और उसे इख़्तियार किया।'' (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 1071)

इससे मालूम होता है कि अल्लाह के नज़दीक वही दीन कारामद है, जो सीधे तौर पर क़ुरआन के मुताले से समझा जाए। इसके मुक़ाबले में वह दीन रिजेक्ट हो जाएगा, जो समाजी रिवाज पर मबनी हो यानी हक़ीक़ी मोमिन वही है, जिसका दीन हक़ की शऊरी दरयाफ़्त पर मबनी हो और ग़ैर-मोमिन का मामला यह होता है कि लोगों में जिस चीज़ का रिवाज हो, वही वह अपना दीन बना लेता है।

उस्मान बिन अफ़्फ़ान रज़ियल्लाहु अन्हु जब किसी क़ब्र पर खड़े होते, तो वे रोने लगते, यहाँ तक कि उनकी दाढ़ी तर हो जाती। उनसे कहा गया कि आप जन्नत और दोज़ख़ का ज़िक्र करते हैं, मगर इस पर नहीं रोते और यहाँ रो रहे हैं। उन्होंने कहा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु

अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि क़ब्र आख़िरत की मंज़िलों में से पहली मंज़िल है, तो जो इस से बच गया, उसके बाद की मंज़िल उसके लिए बहुत आसान होगी और अगर वह इससे नहीं बचा, तो बाद की मंज़िल उसके लिए बहुत सख़्त होगी। वे कहते है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि मैंने क़ब्र से ज़्यादा सख़्त और ज़्यादा वहशत-नाक मंज़र कोई और नहीं देखा।

(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2308; सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 4267)

तशरीह : इस हदीस का ताल्लुक़ क़ब्र की हक़ीक़त बयान करने से ज़्यादा इस बात पर है कि किसी क़ब्र को देखकर एक मोमिन के ऊपर किस क़िस्म का तास्सुर क़ायम होना चाहिए। असल हक़ीक़त के एतिबार से यह मोमिन की अपनी कैफ़ियात का बयान है, न कि क़ब्र के हालत से।

उस्मान बिन अफ़्फ़ान रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम किसी मय्यत के दफ़्न से फ़ारिग़ होते, तो आप वहाँ कुछ देर ठहरते और फ़रमाते कि अपने भाई के लिए ख़ुदा से मग़फ़िरत माँगो और उसके लिए साबित-क़दम रहने की दुआ करो, क्योंकि इस वक़्त उससे सवाल किया जा रहा है।

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 3221)

तशरीह : इसका मतलब ग़ालिबन यह नहीं है कि क़ब्र के गड्ढे में उससे सवाल किया जा रहा है। इसका मतलब यह है कि तुम्हारा भाई अब अमल के मरहले से गुज़रकर सवाल के मरहले में दाख़िल हो गया है। उसके लिए दुआ करो कि इस नाज़ुक मरहले में वह कामयाब हो। यहाँ क़ब्र की हैसियत अलामती है, न कि मकानी।

अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "काफ़िर पर उसकी क़ब्र में निन्यानवे अज़्दहे मुसल्लत कर दिए जाते हैं, जो उसे नोचते और डसते रहते हैं, यहाँ तक कि क़यामत का दिन आ जाए। उनमें से एक भी अज़्दहा अगर ज़मीन पर एक फुफकार मार दे, तो ज़मीन सब्ज़े उगाने के क़ाबिल न रहे। (अल-दारिमी) इसी तरह की रिवायत तर्मिजी ने भी नक़ल की है, लेकिन इसमें निन्यानवे के बजाय सत्तर का अदद मज़कूर (संख्या उल्लिखित) है।
>
> (सुनन अल-दारमी, हदीस नंबर 2815; सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2460)

तशरीह : इस हदीस में जिस मामले का ज़िक्र है, वह आख़िरत की दुनिया में पेश आने वाला एक मामला है। यह एक तमसीली उस्लूब है, जिसके ज़रिये हक़ का इनकार करने वाले के ख़ौफ़नाक अंजाम को बयान किया गया है, ताकि इंसान आसानी के साथ इस हक़ीक़त को समझ सके और इससे बचने की तैयारी कर ले। इस क़िस्म की रिवायतों को इस उसूल की रोशनी में मुख़्तसर तौर पर समझना चाहिए।

जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं—

> "जब साद बिन मुआज़ ने वफ़ात पाई, तो हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ उनकी तरफ़ गए। जब आपने उन पर नमाज़ पढ़ ली और वे अपनी क़ब्र में रखे गए और उन पर मिट्टी बराबर कर दी गई, तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने बहुत लंबी तस्बीह पढ़ी। हमने भी तस्बीह पढ़ी, फिर आपने तकबीर कही और हमने भी तकबीर कही।

अर्ज़ किया गया, ऐ ख़ुदा के रसूल! पहले तस्बीह और फिर तकबीर क्यों कही? फ़रमाया कि इस नेक बंदे पर उसकी क़ब्र तंग हो गई थी, यहाँ तक कि अल्लाह ने चौड़ी कर दी।"

(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 14873)

तशरीह : शेख़ नासिरुद्दीन अल्बानी (वफ़ात : 1999) ने इस हदीस के बारे में लिखा है कि इसकी सनद ज़ईफ़ है। साद बिन मुआज़ अंसारी रज़ियल्लाहु अन्हु एक मुमताज़ सहाबी थे। ख़ुद मज़कूरा रिवायत में उन्हें 'अब्दु सालेह' (नेक बंदा) कहा गया है। ऐसी हालत में बज़ाहिर यह नाक़ाबिल-ए-क़ियास है कि उनके ऊपर अज़ाब के लिए क़ब्र तंग हो जाए।

अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने (साद बिन मुआज़ के बारे में) फ़रमाया—

"ये वही हैं, जिनके लिए अर्श हिला और उनके लिए आसमान के दरवाज़े खोले दिए गए और उनके जनाज़े में सत्तर हज़ार फ़रिश्ते शामिल हुए और यह भी हक़ीक़त है कि एक बार उन्हें क़ब्र ने दबोच लिया, फिर उन्हें इसमें कुशादगी हासिल हो गई।"

(सुनन अल-निसाई, हदीस नंबर 2055)

तशरीह : हज़रत साद बिन मुआज़ पहले दर्जे के मोमिन और सहाबी हैं, इसलिए या तो इस रिवायत में रावी से कोई भूल हुई है या फिर यह एक ऐसा ग़ैबी मामला है, जिसके बारे में आम इंसान को इल्म नहीं है।

असमा बिंत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ख़ुतबे के लिए खड़े हुए। आपने क़ब्र के उस फ़ित्ने का ज़िक्र किया, जिसमें आदमी मुब्तला किया जाता

है। जब आपने इसका ज़िक्र किया, तो मुसलमान चीख-चीखकर रोने लगे। बुख़ारी की रिवायत में इतना ही है। निसाई ने असमा रज़ियल्लाहु अन्हा के ये अलफ़ाज़ भी नक़ल किए हैं कि यह सूरतेहाल मेरे लिए रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की बात सुनने और समझने में रुकावट हो गई। फिर जब लोगों के रोने और चीखने की आवाज़ बंद हुई, तो मैंने अपने क़रीब के आदमी से पूछा कि ऐ फ़लाँ शख़्स, अल्लाह तुम्हें बरकत दे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपने ख़ुतबे के आख़िर में क्या फ़रमाया? उसने बताया कि आपने फ़रमाया कि मुझ पर यह वह्य नाज़िल हुई है कि तुम अपनी क़ब्रों में जिस फ़ित्ने में मुब्तला होंगे, वह दज्जाल के फ़ित्ने से क़रीब होगा।

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1373)

तशरीह : ये रोने वाले लोग सब-के-सब असहाब-ए-रसूल थे। इससे मालूम हुआ कि मोमिन अगर सालेह और बा-अमल हो और उसकी नीयत दुरुस्त हो, तब भी वह आख़िरत के अज़ाब से डरता है। सच्चा मोमिन अंदेशे की नफ़्सियात में जीता है, न कि सुकून की नफ़्सियात में।

जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "जब मुर्दा क़ब्र में रखा जाता है, तो सूरज उसे डूबता हुआ मालूम होता है। चुनाँचे वह अपनी आँख मलता हुआ उठता है और कहता है कि मुझे छोड़ो, मैं नमाज़ पढ़ लूँ।"

(सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 4272)

तशरीह : इस हदीस से मालूम होता है कि आदमी की नफ़्सियात का तसलसुल मौत के बाद भी जारी रहता है। जो आदमी मौजूदा दुनिया में ख़ुदा की याद में जीता हो, उसकी यह नफ़्सियात मौत के बाद भी

उसके अंदर बाक़ी रहेगी। इसके बरअक्स जो आदमी ग़ैर-ख़ुदा में जी रहा हो, वह मौत के बाद भी ब-दस्तूर उसी हालत में मुब्तला रहेगा।

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "मुर्दा क़ब्र में पहुँचता है, तो जब नेक इंसान अपनी क़ब्र में बिठाया जाता है, वह न तो घबराता है और न ही परेशान होता है। फिर उससे सवाल किया जाता है कि बताओ, तुम किस दीन पर थे? वह कहता है कि मैं इस्लाम पर था। फिर उससे कहा जाता है कि यह कौन शख़्स है? वह कहता है कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं, जो हमारे पास अल्लाह के यहाँ से खुली दलीलें लेकर आए। हमने उनको माना। फिर उससे कहा जाता है कि क्या तुमने अल्लाह को देखा है? वह कहता है कि अल्लाह को देखना किसी के लिए मुमकिन नहीं। फिर उसके लिए दोज़ख़ की तरफ़ एक खिड़की खोली जाती है। वह देखता है कि दोज़ख़ का एक हिस्सा उसके दूसरे हिस्से को तहस-नहस कर रहा है। फिर उससे कहा जाता है कि देखो, इससे अल्लाह ने तुम्हें बचा लिया। फिर उसके लिए जन्नत की तरफ़ एक खिड़की खोल दी जाती है, जिससे वह जन्नत की रौनक़ और उसकी नेमतों को देखता है। उससे कहा जाता है कि देखो, यही तुम्हारा ठिकाना है, जो तुम्हें तुम्हारे इस यक़ीन पर मिलेगा, जिस पर तुम थे। इसी पर तुम्हारी मौत आई, इसी पर इंशा अल्लाह तुम्हें उठाया जाएगा। इसके बरअक्स बुरा शख़्स अपनी क़ब्र में घबराया हुआ और परेशान हाल उठकर बैठता है। उससे कहा जाता है कि तुम किस दीन पर थे? वह कहता है कि मुझे मालूम नहीं। फिर उससे पूछा जाता है कि बताओ, यह शख़्स कौन है? वह कहता है कि मैंने लोगों

को एक बात कहते हुए सुना, तो मैंने भी कह दिया। फिर उसके लिए जन्नत की तरफ़ एक खिड़की खोली जाती है, जिससे वह जन्नत की रौनक़ को और जो कुछ उसमें है, उसे देखता है। फिर उससे कहा जाता है कि देखो, यह वह जगह है, जिसे अल्लाह ने (तुम्हारे बुरे अमल की वजह से) तुमसे फेर दिया है। फिर उसके लिए दोज़ख़ की तरफ़ एक खिड़की खोली जाती है, जिससे वह देखता है कि इसका एक हिस्सा दूसरे हिस्से को तहस-नहस कर रहा है। अब उससे कहा जाता है कि देखो, यही तुम्हारा ठिकाना है, जो तुम्हें तुम्हारे इस शक के बिना पर मिलेगा, जिसमें तुम मुब्तला थे। इसी शक की हालत में तुम्हारी मौत आई और इंशा अल्लाह, उसी हालत में तुम्हें उठाया जाएगा।"

(सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 4268)

तशरीह : हक़ हमेशा दलील की सतह पर ज़ाहिर होता है। कामयाब इंसान वह है, जो दलील की सूरत में ज़ाहिर होने वाले हक़ को पहचान ले और पूरी तरह यक़ीन के साथ उसे इख़्तियार कर ले। दूसरा इंसान वह है, जो दलील की सूरत में हक़ को पहचानने में नाकाम रहे। जो दलाइल के बावजूद बराबर शक में मुब्तला रहे। पहले इंसान के लिए जन्नत है और दूसरे इंसान के लिए जहन्नम।

आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"जो शख़्स हमारे इस दीन में ऐसी बात निकाले, जो इसमें नहीं है, तो वह बातिल है।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 2697)

तशरीह : इसी को बिद्दत (innovation) कहते हैं। इस्लाम में इज्तिहाद जायज़ है, मगर इस्लाम में बिद्दत जायज़ नहीं। इज्तिहाद

बदले हुए हालात में जायज़ है, लेकिन बिद्दत जायज़ नहीं है। इज्तिहाद मौजूदा इस्लामी तालीम के नए हालात को समझकर उसके मुताबिक़ अमल करने (re-application) का नाम है। इसके बरअक्स बिद्दत यह है कि दीन में कोई ऐसी नई बात निकाली जाए, जो क़ुरआन और हदीस से साबित न हो। बिद्दत की एक मिसाल क़ुरआन के मुताबिक़ 'रहबानियत' (57:27) है। रहबानियत का मतलब है— दुनिया की मोहब्बत से बचने के लिए ख़ुद दुनिया को छोड़ देना, मगर ख़ुदा के दीन में तर्क-ए-दुनिया की तालीम नहीं दी गई है। सही ख़ुदाई दीन यह है कि आदमी दुनिया में रहे, मगर वह दुनिया की मुहब्बत में मुब्तला न हो। इस मिसाल से बिद्दत की दूसरी क़िस्मों को समझा जा सकता है।

जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने ख़ुत्बा देते हुए फ़रमाया—

> "बिला-शुब्हा अल्लाह का कलाम सबसे बेहतर कलाम है और सबसे बेहतर तरीक़ा मुहम्मद का तरीक़ा है और सबसे बुरी चीज़ वे बातें हैं, जो नई निकाली जाएँ और हर बिद्दत गुमराही है।"
>
> (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 867)

तशरीह : बिद्दत क्यों सबसे बड़ी बुराई है? इसका सबब यह है कि बिद्दत ख़ुदा के दीन में एक इंसानी इज़ाफ़ा है। बिद्दत दरअसल यह है कि ग़ैर-दीनी तरीक़े को दीन का नाम देकर इख़्तियार कर लिया जाए। इस क़िस्म का इज़ाफ़ा एक मुजरिमाना गुस्ताख़ी भी है और सिरात-ए-मुस्तक़ीम (सीधी राह) से भटकना भी। यहूद और नसारा अपने दौर-ए-ज़वाल में जिन बुराइयों में मुब्तला हुए, उनमें से एक बुराई वह है, जिसे क़ुरआन में 'मुज़ाहात' (9:30) कहा गया है। मुज़ाहात के लफ़्ज़ी मअनी मुशाबहत (imitation) के हैं यानी ग़ैर-दीनी तरीक़े को दीन का लेबल

लगाकर इख़्तियार कर लेना, मसलन— ग़ैर-मुस्लिमों के यहाँ ख़ुदा की परस्तिश के बजाय बुतों की परस्तिश का रिवाज है, इससे मुतास्सिर होकर इस रविश को इख़्तियार कर लेना और इसे बुज़ुर्गान-ए-दीन की पैरवी या ताज़ीम का नाम दे देना वग़ैरह। बिद्दत के तमाम तरीक़े इसी मुज़ाहात की फ़ेहरिस्त में शामिल हैं।

अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "अल्लाह के नज़दीक लोगों में सबसे ज़्यादा नापसंद लोग तीन हैं— हरम में बे-दीनी करने वाला, इस्लाम में जाहिलियत के तरीक़े चाहने वाला और किसी इंसान का ख़ून नाहक़ बहाने का तलबगार, ताकि वह उसका ख़ून बहाए।"
>
> (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6882)

तशरीह : जुर्म की दो क़िस्में हैं। एक वह, जो इंसानी कमज़ोरियों के तहत सरज़द हों। दूसरा वह, जो अनानियत (ego) की बिना पर किया जाए। इस दूसरे क़िस्म के जुर्म का नाम सरकशी (rebellion)है और सरकशी बिला-शुब्हा अल्लाह के नज़दीक सबसे ज़्यादा संगीन जुर्म है।

ख़ालिक़ ने इंसान को एक इस्तिसनाई सलाहियत दी है यानी अना (ego)। यह सलाहियत इंसान को पूरी कायनात में एक ख़ुसूसी दर्जा अता करती है, लेकिन अना के दो पहलू हैं— प्लस पॉइंट और माइनस पॉइंट। इज्तिमाई ज़िंदगी, ख़्वाह वह ख़ानदानी ज़िंदगी हो या ख़ानदान से बाहर की ज़िंदगी, इसमें हमेशा ऐसा होता है कि इंसान के साथ ऐसे तजुर्बात पेश आते हैं कि उसका ईगो (अना) जाग उठता है। इस तरह के मौक़े पर अगर ऐसा हो कि इंसान अपने आपको कंट्रोल करे, वह 'ईगो मैनेजमेंट' (ego management) का सबूत दे, तो गोया कि उसने

अपने ईगो का सही इस्तेमाल किया और अगर ऐसा हो कि जब उसका ईगो भड़के, तो उसकी पूरी शख़्सियत इससे मुतास्सिर हो जाए। ऐसी हालत में वह सरकशी के रास्ते पर चल पड़ेगा। यह उसके लिए ईगो मैनेजमेंट में नाकाम होने का वाक़या होगा।

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "मेरी सारी उम्मत जन्नत में जाएगी, सिवा उसके जिसने इनकार किया। कहा गया कि कौन है, जिसने इनकार किया? आपने फ़रमाया कि जिस शख़्स ने मेरी इताअत की, वह जन्नत में दाख़िल होगा और जिसने मेरी ना-फ़रमानी की, उसने इनकार किया।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7280)

तशरीह : पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़रिये अल्लाह तआला ने अक़ीदे और अमल का वह तरीक़ा बताया है, जो इस आख़िरत में निजात का ज़ामिन है। जन्नत में वही शख़्स दाख़िल होगा, जो इस पैग़ंबराना तरीक़े का पैरौ बने।

हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं—

> "रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास फ़रिश्ते आए, जबकि आप सो रहे थे। उन्होंने (आपस में) कहा कि इनकी एक मिसाल है, वह बयान करो। बाज़ फ़रिश्तों ने कहा कि वे सो रहे हैं और कुछ ने कहा कि आँख सो रही है और दिल बेदार है। फिर उन्होंने कहा कि उनकी मिसाल ऐसी है, जैसे कोई शख़्स एक घर बनाए और उसमें एक दस्तरख़ान रखे और बुलाने वाले को भेजे। जो दाई की पुकार पर लब्बैक कहेगा,

वह घर में आएगा और दस्तरख़ान से खाएगा और जो दाई की पुकार पर लब्बैक न कहेगा, वह न घर के अंदर दाख़िल होगा और न दस्तरख़ान से खाएगा। फिर उन्होंने कहा कि उनके लिए इसकी वज़ाहत कर दो, ताकि वे इसे समझ जाएँ। उनमें से बाज़ ने कहा कि वे सो रहे है। उनमें से बाज़ ने कहा कि उनकी आँख सो रही है और दिल जाग रहा है। उन्होंने कहा कि वह घर जन्नत है और दाई मुहम्मद है। पस जिसने मुहम्मद की इताअत की, उसने अल्लाह की इताअत की और जिसने मुहम्मद की ना-फ़रमानी की, उसने अल्लाह की ना-फ़रमानी की और मुहम्मद लोगों के दरमियान फ़र्क़ करने वाले हैं।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7281)

तशरीह : पैग़ंबर-ए-इस्लाम का लाया हुआ दीन गोया रिज़्क़-ए-रब्बानी का एक दस्तरख़ान है। जो आदमी इस दस्तरख़ान से अपना रिज़्क़ ले, वही कामयाब है और जो इस रिज़्क़ से महरूम रहे, वही नाकाम है। इस हक़ीक़त की तरफ़ क़ुरआन में इन अलफ़ाज़ में इशारा किया गया है—

"तुम्हारे रब का रिज़्क़ ज़्यादा बेहतर है और बाक़ी रहने वाला है।" (क़ुरआन, 20:131)

अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि तीन आदमी नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की बीवियों के पास आए। उनसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की इबादत के बारे में सवाल किया, तो उन्हें जब उसकी बाबत बताया गया, तो गोया कि उन्होंने उसे कम समझा। उन्होंने कहा कि हमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से क्या निसबत? उनके अगले-पिछले तमाम गुनाह अल्लाह तआला ने बख़्श दिए हैं। उनमें से एक ने कहा कि मैं तो सारी रात नमाज़

पढ़ूँगा और दूसरे ने कहा कि मैं हर दिन रोज़ा रखूँगा और कभी इफ़्तार न करूँगा। तीसरे ने कहा कि मैं औरत से अलग रहूँगा और मैं कभी निकाह न करूँगा। फिर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उनके पास आए और कहा कि क्या तुम ही वह लोग हो, जिन्होंने ऐसा और ऐसा कहा है? आपने फ़रमाया कि ख़ुदा की क़सम! मैं तुमसे ज़्यादा अल्लाह से डरने वाला हूँ, मगर मैं रोज़े रखता हूँ और रोज़े नहीं भी रखता, नमाज़ पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ और औरतों से निकाह करता हूँ। पस जिसने मेरे तरीक़े से ऐराज़ किया, वह मुझसे नहीं।

(मुत्तफ़क़ अलैह : सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 5063; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 1401)

तशरीह : इस्लामी इबादत यह नहीं है कि आदमी पुर-मशक़्क़त आमाल के ज़रिये अपने जिस्म को थकाए, बल्कि इस्लामी इबादत यह है कि आदमी अल्लाह की तरफ़ मुतवज्जह हो और अपनी रूह को अल्लाह की मोहब्बत और अल्लाह के ख़ौफ़ से आबाद करे। इस हक़ीक़त को क़ुरआन में इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—

"अल्लाह को सिर्फ़ तुम्हारा तक़वा पहुँचता है।"

(क़ुरआन, 22:37)

तजर्बात-ए-मारिफ़त

(ज़ेर-ए-नज़र मज़मून मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के अस्फ़ार और डायरी से मुंतख़ब किया गया है।)

ख़ालिक़ की शहादत

एक मर्तबा मैंने ऑल इंडिया रेडियो खोला, तो उसमें एक गाना आ रहा था। उसकी एक लाइन यह थी—

"जिसकी रचना इतनी सुंदर हो, वह कितना सुंदर होगा!"

शायर ने यह मिसरा अपने मफ़रूज़ा महबूब की निस्बत से कहा है, लेकिन यह मिसरा ज़्यादा हक़ीक़ी तौर पर पूरे आलम-ए-तख़्लीक़ के लिए दुरुस्त है। तख़्लीक़ का हर ज़ुज बेहद बा-मअनी है। हर चीज़ अपने मॉडल के एतिबार से फ़ाइनल मॉडल पर है। ऐसी एक कायनात को देखकर हर संजीदा इंसान इस एहसास में ग़र्क़ हो जाता है कि जिस हस्ती की तख़्लीक़ इतनी ज़्यादा कामिल है, वह ख़ुद कितना ज़्यादा कामिल होगा।

ख़ुदा का एहसास

एक मुस्लिम नौजवान से मुलाक़ात हुई। वे दिल्ली की एक यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं। उन्होंने कहा कि मैं एक फ़िक्री मसले से दो-चार हूँ। मुझे रातों को नींद नहीं आती, मेरा ज़ेहनी सुकून ख़त्म हो गया है। उन्होंने बताया कि मैं ख़ुदा को मानता हूँ, लेकिन मैं ख़ुदा को महसूस नहीं कर पाता। मैं चाहता हूँ कि ख़ुदा को एहसास (feeling) के ज़रिये मैं अपनी ज़िंदगी में शामिल करूँ। इसकी तदबीर क्या है? मैंने कहा कि एहसास से पहले एक प्री-एहसास (pre-feeling) दरकार है यानी मुताला और ग़ौर-ओ-फ़िक्र। आप अपने मुताले को बढ़ाइए। इसके बाद आपको इस मसले का हल मालूम हो जाएगा। जब आप ग़ौर करेंगे, तो पाएँगे कि आपको अपनी माँ से जो ताल्लुक़ है, वह टेक्निकल नौइयत का नहीं है, बल्कि वह एहसास (feeling) के दर्जे में है, क्योंकि आपने यह हक़ीक़त शऊरी सतह पर दरयाफ़्त की है कि मेरी माँ ने मेरे साथ शफ़क़त का मामला किया है। इसके बरअक्स माँ से सैकड़ों गुना ज़्यादा शफ़क़त अल्लाह तआला की आपके ऊपर है। फिर क्यों ऐसा है कि माँ को तो आपने एहसास के दर्जे में पाया है, मगर ख़ुदा को एहसास के दर्जे में न पा सके? इसका सबब यह है कि आपने माँ की शफ़क़त को दरयाफ़्त किया, जबकि आप ख़ुदा की शफ़क़तों से शऊर की सतह पर बे-ख़बर रहे।

इंसान की ज़िंदगी

एक सफ़र में मेरा जहाज़ दिल्ली से रवाना होकर मंज़िल की तरफ़ परवाज़ करने लगा। वह रुके बग़ैर मुसलसल उड़ रहा था। घड़ी की सूई भी बराबर आगे बढ़ रही थी, यहाँ तक कि रवानगी के ठीक एक घंटा और 50 मिनट पर अनाउंसर (एंकर) ने ऐलान किया कि अब हम पुणे के हवाई अड्डे पर उतरने वाले हैं।

मैंने ये अलफ़ाज़ सुने, तो मुझे महसूस हुआ, जैसे अनाउंसर यह कह रहा हो कि जहाज़ की परवाज़ की आख़िरी हद आ गई। फिर मैंने सोचा कि मुख़्तलिफ़ जहाज़ों की मुख़्तलिफ़ हद होती है। कोई जहाज़ आधा घंटा उड़कर उतर जाता है, कोई एक घंटा और कोई दो घंटा और कोई दस घंटे उड़ने के बाद नीचे उतरता है। ठीक यही मामला इंसान का भी है। एक शख़्स पैदा होते ही मर जाता है। गोया उसके जीने की हद चंद मिनट या चंद घंटे थी। इसी तरह कोई शख़्स चंद साल गुज़ारकर मरता है। कोई जवानी में मर जाता है और कोई बूढ़ा होकर मरता है। इसका मतलब यह है कि हर उम्र मौत की उम्र है। आदमी का हर लम्हा उसका आख़िरी लम्हा है। हर वक़्त आदमी अपनी आख़िरी हद पर खड़ा हुआ है। ज़िंदगी का यह मामला इतना अजीब है कि आदमी अगर इसे सोचे, तो पुर-ऐश महल में भी उसकी ज़िंदगी बे-ऐश होकर रह जाए।

आख़िरत का टिकट

मेरे साथ बार-बार ऐसा वाक़या पेश आया है कि मैं टिकट के बावजूद सफ़र न कर सका, मसलन— एक बार मेरे पास लंबे आलमी सफ़र का टिकट था। किसी वजह से मुझे अपने सफ़र को मुख़्तसर करना पड़ा। मैंने टिकट की बची हुई रक़म का वाउचर बनवा लिया, जो इसके बाद कई सफ़रों में काम आया। आख़िर में मेरे पास दिल्ली-बंबई (मुंबई) का रिटर्न टिकट था। इस टिकट को दोबारा रक़म की सूरत में तब्दील नहीं

किया जा सकता था। सिर्फ़ सफ़र ही में इसे इस्तेमाल करना मुमकिन था, मगर ऐसे हालात पेश आते रहे कि मैं बंबई का सफ़र न कर सका, यहाँ तक कि टिकट की मुद्दत आख़िरी तौर पर ख़त्म हो गई और वह इस्तेमाल के क़ाबिल न रहा।

थोड़ी देर के लिए एहसास हुआ कि एक टिकट बिला-वजह ज़ाया हो गया, मगर जल्द ही मेरे अंदर एक नया एहसास जाग उठा। मेरी ज़ुबान से निकला— "ख़ुदाया! मैं इस टिकट को दुनिया के सफ़र के लिए इस्तेमाल न कर सका। तू अपनी रहमत से इसे मेरे लिए आख़िरत का टिकट बना दे।" इसके बाद नुक़सान का एहसास जाता रहा और दिल में एक क़िस्म का सुकून पैदा हो गया।

पॉइंट ऑफ़ रेफ़रेंस

2 नवंबर, 1991 को घर से निकलकर पुणे के सफ़र के लिए एयरपोर्ट की तरफ़ रवाना हुआ, तो इंसानी तारीख़ का नक़्शा मेरे ज़ेहन में घूमने लगा। मौजूदा ज़माने में सफ़र की सूरत यह होती है कि आदमी अपने घर से निकलता है। वह सवारी पर बैठकर पुख़्ता सड़कों से गुज़रता हुआ स्टेशन या एयरपोर्ट पहुँचता है। वहाँ उसके लिए एक और सवारी मौजूद होती है, जो उसे लेकर तेज़ी से आगे रवाना होती है और उसे उसकी मंज़िल तक पहुँचा देती है। मंज़िल पर दुबारा यही सारे इंतिज़ामात होते हैं, जिन्हें इस्तेमाल करके वह अपने आख़िरी मतलूब मुक़ाम पर पहुँच जाता है।

चंद हज़ार साल पहले इंसानी ज़िंदगी इससे बिलकुल मुख़्तलिफ़ थी। इंसान नीम हैवानात की तरह जंगलों में रहता था। इसके बाद धीरे-धीरे तरक़्क़ी शुरू हुई, यहाँ तक कि शहरी ज़िंदगी का वह दौर आ गया, जिसे मदनियत (urbanization) कहा जाता है। मुस्लिम अहद से पहले यह रफ़्तार बहुत सुस्त थी। मुस्लिम अहद में इंसानी तहज़ीब निहायत तेज़ रफ़्तारी के साथ आगे बढ़ी। आठवीं सदी ईस्वी में मुसलमानों ने

बग़दाद की जिस तरह तामीर की, वह पुराने ज़माने के शहरों से इतना मुख़्तलिफ़ है कि वह शहरी तारीख़ में एक छलाँग मालूम होता है। अर्बन प्लानिंग के प्रोफ़ेसर एगली (Ernst Arnold Egli) ने इसकी तौजीह करते हुए लिखा है—

> "क़ुरआन में जन्नत की ज़िंदगी और जन्नत के मकानात का जिस तरह बार-बार ज़िक्र किया गया है, उसने मुसलमानों के अंदर उम्दा मकानात और आला तमद्दुन के बारे में एक ख़्याली तस्वीर (dream image) बनाई। उन्होंने इस ख़्याली तस्वीर को वाक़या बनाने की कोशिश की। इसके नतीजे में मुस्लिम दुनिया के मॉडर्न शहर वजूद में आ गए।"
>
> (Encyclopedia Britannica, Vol. 18, p. 1071)

मुस्लिम तारीख़ के इन वाक़यात को मुसलमानों के लिखने और बोलने वाले आम तौर पर क़ौमी फ़ख़्र के अंदाज़ में बयान करते हैं। वे इसे मुसलमानों के पुर-फ़ख़्र कारनामे के ख़ाने में डाले हुए हैं। हालाँकि उन्हें आला-ए-अल्लाह के तौर पर बयान किया जाना चाहिए।

इस दुनिया की हर तरक़्क़ी असल में क़ुदरत में छुपे हुए इम्कानात को ज़ुहूर में लाने का नाम है। इंसान इन इम्कानात को ईजाद करने वाला नहीं, वह सिर्फ़ उन्हें इस्तेमाल करने वाला है। जब ऐसा है, तो हमें चाहिए कि इन तरक़्क़ियों को देखकर हम ख़ुदा के गीत गाएँ, न कि उन्हें ख़ुद अपने ख़ाने में डालकर फ़ख़्र और नाज़ करने लगें।

ख़ुदा की सुन्नत : क़ानून-ए-तद्रीज

दिल्ली से पुणे 1600 किलोमीटर दूर है। क़दीम ज़माने में दिल्ली से पुणे पहुँचने के लिए 16 दिन से भी ज़्यादा वक़्त दरकार था, मगर आज यह सफ़र सिर्फ़ दो घंटे में तय हो जाता है। 2 नवंबर, 1991 को मैंने अस्र की नमाज़ दिल्ली (निज़ामुद्दीन) की काली मस्जिद में अदा की। मग़रिब की

नमाज़ दोबारा दिल्ली एयरपोर्ट पर पढ़ी और इशा की नमाज़ के वक़्त मैं पुणे पहुँच चुका था।

अल्लाह तआला ने इंसान को दो पैरों के साथ पैदा किया, ताकि वह चल सके। फिर उसे घोड़ा दिया, जो गोया सवारी की ज़िंदा मशीन है। इसके बाद इंसान पर स्टीम और पेट्रोल की ताक़त मुनकशिफ़ की, जिसके नतीजे में ट्रेन और कार बने और आख़िर में हवाई जहाज़ जैसी तेज़ रफ़्तार सवारी उसे अता की। इस तदरीजी तरीक़े-कार के नतीजे में ऐसा हुआ कि पैग़ंबरों में से किसी भी पैग़ंबर के लिए कार और हवाई जहाज़ पर बैठना मुमकिन न हो सका। पैग़ंबर तमाम इंसानों में सबसे ज़्यादा मुक़द्दस लोग थे, मगर उनके तमाम-तर तक़द्दुस के बावजूद ख़ुदा ने उनके लिए अपने क़ानून-ए-तद्रीज (law of gradualism) को नहीं तोड़ा। इससे ख़ुदा की सुन्नत का अंदाज़ा होता है। तद्रीज इस दुनिया के लिए ख़ुदा का अटल क़ानून है। वह किसी भी वजह से और किसी के लिए बदला नहीं जाता।

छोटी जमात

पुणे के सफ़र (1991) का वाक़या है। रोज़ाना सुबह और शाम को मक़ामी अहबाब रिहायश-गाह पर आते रहे और उनसे सवाल-जवाब की सूरत में गुफ़्तुगू होती रही। एक सवाल के जवाब में मैंने कहा कि हिंदुस्तान के मुसलमानों के बारे में मैं इंतिहाई पुर-उम्मीद हूँ। उनके बारे में क़ुरआन की यह आयत सादिक़ होती नज़र आती है—

كَمْ مِّنْ فِئَةٍ قَلِيْلَةٍ غَلَبَتْ فِئَةً كَثِيْرَةًۢ
بِاِذْنِ اللّٰهِ ۗ وَاللّٰهُ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ.

“कितनी ही छोटी जमातें अल्लाह के हुक्म से बड़ी जमातों पर ग़ालिब आई हैं और अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है।”

(क़ुरआन, 2:249)

इस आयत में ख़ुदा का यह क़ानून बताया गया है कि इस दुनिया में ऐसा होता है कि छोटी जमात अकसर बड़ी जमात पर ग़ालिब आती है। एक अर्से तक मुसलमान सियासी जोश-ओ-ख़रोश में अपनी क़ुव्वतें ज़ाया करते रहे। अब हालात का दबाव मुसलमानों को सही रुख़ दे रहा है। वे सियासत के महाज़ से हटकर तामीर के मैदान में सरगर्म-ए-अमल हो रहे हैं।

तकलीफ़ और ताक़त

एक साहब ने सवाल किया कि आप कहते हैं कि इस वक़्त हम 'मक्की दौर' में हैं और हम मक्की दौर में उतरने वाले अहकाम के मुख़ातिब हैं। आप किस बुनियाद पर ऐसा कहते हैं, जबकि अब मुकम्मल क़ुरआन उतर चुका है और वह आज मुकम्मल सूरत में हमारे पास मौजूद है।

मैंने कहा कि यह बात क़ुरआन के उसूल-ए-तकलीफ़ से निकलती है। क़ुरआन के मुताल्लिक़ अलफ़ाज़ ये हैं—

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا.

"अल्लाह किसी पर ज़िम्मेदारी नहीं डालता, मगर उसकी ताक़त के मुताबिक़।" (क़ुरआन, 2:286)

इससे मालूम होता है कि किसी मुसलमान या किसी जमात के ऊपर क़ुरआन के अहकाम पर अमल करना इंसान की ताक़त के एतिबार से है, न की क़ुरआन के नाज़िल होने के एतिबार से है। हज और ज़कात के अहकाम उतर चुके हैं, मगर इन अहकाम की फ़र्ज़ियत सिर्फ़ उन अफ़राद के ऊपर है, जो इसकी इस्तिताअत रखते हों। यही मामला तमाम अहकाम का है। आदमी जिस हुक्म की तामील की इस्तिताअत रखता हो, उसका वह ज़िम्मेदार बन जाएगा और जिस हुक्म की वह ताक़त न रखता हो, उसका वह मुकल्लिफ़ नहीं बनेगा।

मुश्किलात-ए-हाज़िरा, इम्कानात-ए-हाज़िरा

6 नवंबर को मग़रिब और इशा की नमाज़ के बाद पुणे की मक्का मस्जिद में उमूमी ख़िताब हुआ। मौज़ू रखा गया था— हालात-ए-हाज़िरा और मुसलमान। मैंने कहा कि इस उनवान के मेरे नज़दीक दो पहलू हैं। एक, आज के ज़माने की मुश्किलात और मुसलमान और आज के ज़माने के मवाक़े व मुसलामान। दूसरा, इसके बाद तफ़्सील से मैंने बताया कि बिला-शुब्हा हमारे लिए कुछ मुश्किलात हैं, मगर इस क़िस्म की मुश्किलात हर समाज में और हर मुल्क में हमेशा रहती हैं। मज़ीद मुताला यह बताता है कि इम्कानात की मिक़दार मुश्किलात की मिक़दार से हमेशा बहुत ज़्यादा होती है और आज भी बहुत ज़्यादा है। ऐसी हालत में हमें परेशान होने के बजाय इम्कानात को तलाश करके उसे इस्तेमाल (avail) करना चाहिए।

मुताले का दुरुस्त तरीक़ा

एक तालीम-याफ़्ता ईसाई ने कहा कि मैंने इस्लाम का मुताला शुरू किया है, मगर कुछ सवालात मेरे ज़ेहन को उलझा रहे हैं। मैंने पूछा कि वे कौन-से सवालात हैं? उन्होंने कहा कि इस्लाम में ग़ुलामी का मसला, पैग़ंबर का कई शादी करना, हजर-ए-अस्वद को चूमना वग़ैरह।

मैंने कहा कि इस्लाम या किसी भी निज़ाम का मुताला करने का यह तरीक़ा दुरुस्त नहीं। हर मज़हब या हर निज़ाम में कुछ अहम चीज़ें होती हैं और कुछ ग़ैर-अहम चीज़ें। एक संजीदा मुतलाशी का काम यह होना चाहिए कि वह पहले ज़ेर-ए-मुताला मज़हब या निज़ाम की बुनियादी बातों को समझने की कोशिश करे। जब इनके बारे में पूरी वाक़फ़ियत हासिल हो जाए। इसके बाद वह वक़्त आता है, जबकि आम बातों को समझा जाए। मैंने कहा कि अगर आप अमेरिका के निज़ाम-ए-तहज़ीब को समझना चाहें, तो इसका आग़ाज़ आप यहाँ से नहीं करेंगे

कि अमेरिका के साबिक़ सदर रोनाल्ड रीगन अपनी जेब में हमेशा सोने की नाल क्यों रखते थे। मुताले का यह तरीक़ा दुरुस्त न होगा। इसके बरअक्स आप यह करेंगे कि पहले अमेरिका की तारीख़, उसके उलूम, उसके क़ानून और उसके सनअती और तिजारती (industrial and commercial) तरीक़ों को समझने की कोशिश करेंगे। यही तरीक़ा इल्मी तरीक़ा है और यही तरीक़ा आपको इस्लाम के मुताले में भी इख़्तियार करना चाहिए।

हवाई जहाज़ और सय्यारा-ए-ज़मीन

27 नवंबर, 1994 को दिल्ली से एयर फ्रांस की फ़्लाइट नंबर 177 के ज़रिये स्पेन का सफ़र हुआ। हवाई जहाज़ की सवारी मुझे एक ख़ुदाई निशानी नज़र आती है। हवाई जहाज़ की एक अजीब सिफ़त यह है कि वह इंसान की उस कमज़ोरी (vulnerability) को अमली शक्ल में ज़ाहिर करता है, जो ज़मीन के ऊपर उसे हासिल है। ज़मीन फ़ुटबॉल की मानिंद एक बड़ा-सा गोला है, जो ख़ला (space) में तेज़ रफ़्तारी के साथ सूरज के इर्द-गिर्द घूम रहा है। इसी तरह एक जहाज़ इंसानों को लिये हुए ज़मीन की फ़िज़ा में परवाज़ करता है। ख़ला में गर्दिश करने वाले इस कुरह (planet) पर इंसान आबाद है। ज़मीन की इस मुसलसल गर्दिश में अगर ज़रा-सा भी ख़लल पड़ जाए, तो एक लम्हे में नस्ल-ए-इंसान का ख़ात्मा हो जाए। जिस तरह फ़िज़ा में परवाज़ करते हुए जहाज़ में अगर कोई ख़राबी पैदा हो जाए, तो वह अपने अंदर मौजूद तमाम मुसाफ़िरों की हलाकत का ज़रिया बन सकता है। ज़मीन पर अपनी इस ग़ैर-महफ़ूज़ियत को इंसान अपनी आँखों से नहीं देखता, इसलिए वह इसे महसूस भी नहीं कर पाता। हवाई जहाज़ आदमी की इसी ग़ैर-महफ़ूज़ हालत का महदूद सतह पर एक वक़्ती मुज़ाहिरा है। हवाई जहाज़ इंसान के इज्ज़ (helplessness) की एक मशीनी याददहानी है। इस दुनिया की हर चीज़ इसलिए है कि आदमी इससे रूहानी तजुर्बा

हासिल करे, मगर यह रूहानी तजुर्बा सिर्फ़ उसके हिस्से में आता है, जो मैटर में नॉन-मैटर को देखने की सलाहियत रखता हो।

बैतुल मुक़द्दस में दुआ

इसराईल के सफ़र में 29 अप्रैल, 1995 को दूसरी बार मस्जिद-ए-अक़्सा में दाख़िल हुआ और दो रकअत नमाज़ अदा की। इस वक़्त इसराईल के एतिबार से 9 बजे सुबह का वक़्त था और हिंदुस्तान के लिहाज़ से साढ़े ग्यारह बजे का। नमाज़ पढ़ते हुए दिल भर आया। सजदा में रोते हुए दुआ के ये अलफ़ाज़ निकले कि ख़ुदाया! ज़माने का फ़र्क़ तेरे नज़दीक कोई फ़र्क़ नहीं। तू मेरे लिए ज़मानी दूरी को ख़त्म कर दे। मुझे उस मुक़द्दस जमात की सफ़ों में शरीक कर दे, जबकि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम यहाँ इमामत कर रहे थे और उनके पीछे अंबिया सफ़ बाँधकर नमाज़ अदा कर रहे थे।

तामीर-ए-दुनिया, तामीर-ए-शख़्सियत

एक हवाई सफ़र में इसराईली एयरलाइंस (EL AL) की फ़्लाइट मैगज़ीन (जुलाई-अगस्त, 1995) देखी। इसमें कसरत से मकानों के इश्तिहार थे। मुख़्तलिफ़ कंपनियों के बनाए हुए मकानों की ख़ूबसूरत तसवीरें और उनके नीचे इस तरह के ख़ुशकुन अलफ़ाज़ लिखे हुए थे— आपके ख़्वाबों का घर इसराईल में मौजूद है (Your dream home in Israel) या यह कि इस ख़ूबसूरत कॉम्प्लेक्स में अपने लिए एक अपार्टमेंट हासिल कीजिए और दुनिया की जन्नत में रहने का लुत्फ़ उठाइए। मैंने एक इसराईली मुसाफ़िर को यह इश्तिहार दिखाकर उसका तास्सुर पूछा। उसने कहा कि हमने ख़ूबसूरत क़िस्म के रिहायशी मकान तो ज़रूर बना लिये हैं, मगर एक नामालूम ख़ौफ़ हर यहूदी के दिमाग़ में होता है कि क्या मालूम, कब और कहाँ एक बम फट जाए।

यह सिर्फ़ इसराईल का मामला नहीं है। क़ुरआन के मुताबिक़, मौजूदा दुनिया इंसान के लिए परफेक्ट वर्ल्ड नहीं है, यह दुनिया इंसान के लिए 'दार-उल-कब्द' (90:4) है। इस दुनिया में इंसान को कब्द या उस्र (hardship) के अंदर पैदा किया गया है। यहाँ इंसान को मुख़्तलिफ़ क़िस्म के हज़्न (sorrow) का तजुर्बा होता है। यहाँ उसे हर क़दम पर महदूदियत (limitations) का सामना करना पड़ता है। यहाँ इंसान के लिए फुलफिलमेंट (fulfillment) का सामान मौजूद नहीं है। यहाँ तकलीफ़ है। यहाँ बोरडम (boredom) है वग़ैरह-वग़ैरह। इसका तजुर्बा दुनिया के हर कोने में रहने वाले हर मर्द और हर औरत को किसी-न-किसी सूरत में होता रहता है।

इसके बिल-मुक़ाबिल क़ुरआन में बताया गया है कि अहले-जन्नत जब जन्नत में दाख़िल होंगे और वहाँ के माहौल का तजुर्बा करेंगे, तो उनकी ज़ुबान से निकलेगा—

> "उस अल्लाह का शुक्र है, जिसने ख़ौफ़ और हज़्न को हमसे दूर कर दिया।" (क़ुरआन, 35:34)

इसी तरह क़ुरआन में दूसरे मक़ाम पर यह है—

> "तुम्हारे लिए वहाँ हर चीज़ है, जिसका तुम्हारा दिल चाहे और तुम्हारे लिए इसमें हर वह चीज़ है, जो तुम तलब करोगे।" (क़ुरआन, 41:31)

दोनों दुनियाओं के फ़र्क़ को सामने रखने से इंसान को यह सबक़ मिलता है कि वह मौजूदा दुनिया में तामीर-ए-जन्नत की जद्दोजहद करने के बजाय आख़िरत की जन्नत के लिए अपने अंदर रब्बानी पर्सनालिटी तामीर करे।

इत्मीनान की मुतलाशी दुनिया

1991 में एक कॉन्फ्रेंस में शिरकत के लिए पुणे का सफ़र हुआ। कॉन्फ्रेंस में शरीक होने वालों में एक 36 साल की जर्मन ख़ातून डेलीगेट उर्सुला मैकलैकेंड (Mrs. Ursula McLackand) थीं। उन्होंने एक मीटिंग में अपना तजुर्बा बताया, जो बहुत सबक़-आमोज़ था। वह तजुर्बा, उनके अलफ़ाज़ में, यह था—

> "The highest value in the eyes of the German youths is to become independent. Personally, I don't agree. I was educated to look forward to lead an independent life away from my family as soon as I entered university. But, to my surprise, I was lonely and miserable, missing the interaction with my family. I, therefore, came back to my family. I also joined the German Unification Church to fill the gap in my life. However, I think I am rather an exception. Those of my generation are also not happy but they do not know why that is so. They have lost their conviction, becoming sceptics. One reason of the ever-increasing tourism industry lies in the restlessness found in our generation. It is this dissatisfaction with their lives that they are attracted to travelling, in search of some happiness, and fulfillment in life."

जर्मन नौजवानों की नज़र में सबसे ज़्यादा क़ाबिल-ए-क़द्र चीज़ आज़ाद होना है। ज़ाती तौर पर मुझे इससे इत्तिफ़ाक़ नहीं। मेरी तालीम इस ढंग पर हुई कि तालीम की तकमील के बाद मैं अपने ख़ानदान से बाहर अपने लिए एक आज़ादाना ज़िंदगी गुज़ारूँ, मगर जब मैंने ऐसा किया,

तो ताज्जुब-ख़ेज़ तौर पर मैंने पाया कि मैं तन्हा हो गई हूँ और मुसीबत में पड़ गई हूँ। मेरे ख़ानदान से मेरा रिश्ता टूट चुका है। आख़िरकार मैं अपने ख़ानदान की तरफ़ वापस आई। मज़ीद मैं यूनिफिकेशन चर्च से वाबस्ता हो गई, ताकि मैं अपनी ज़िंदगी के ख़ालीपन को पुर कर सकूँ। हालाँकि मेरा ख़्याल है कि मैं जर्मनी में एक इस्तिस्ना हूँ। मेरी नस्ल के और जो लोग हैं, वे ख़ुश नहीं हैं, मगर वे नहीं जानते कि ऐसा क्यों है। उन्होंने यक़ीन को खो दिया है। वे शक में मुब्तला हैं।

आजकल मग़रिबी टूरिस्ट की बढ़ती हुई तादाद का एक सबब यह भी है। ये लोग ख़ुशहाल ज़िंदगी (luxurious life) गुज़ारने के बावजूद अपनी ज़िंदगी से ग़ैर-मुतमइन हैं, इसलिए वे अपने मक़ामात से निकलकर इधर-उधर जा रहे हैं, ताकि वे ज़िंदगी में खुशी और इत्मीनान को तलाश कर सकें। नशे वग़ैरह में इज़ाफ़ा का सबब भी यही है। यह सूरतेहाल मुसलमानों को इस बात का मौक़ा फ़राहम करती है कि वे क़ुरआन के पैग़ाम को सारी दुनिया में इंसानों की समझने आने वाली ज़बान में आम करें, ताकि लोगों को हक़ीक़ी मअनों में अल्लाह तआला की याद से इत्मीनान हासिल हो।

जन्नत का तसव्वुर

डार्विन ने अपनी किताब 'डिसेंट ऑफ़ मैन' में लिखा है कि बज़ाहिर ऐसा मालूम होता है कि इंसान ने चिड़ियों से बोलना सीखा। यह बिला-शुब्हा एक फ़र्ज़ी क़ियास है। मेरा अपना हाल यह है कि मैं चिड़ियों को जब देखता हूँ, तो मुझे जन्नत का माहौल याद आता है। चिड़ियाँ मुझे जन्नती मख़्लूक़ जैसी नज़र आती हैं। चिड़ियों के हर फ़ेअल में इतना हुस्न है कि उनको देखकर ऐसा मालूम होता है कि चिड़ियों को ख़ुदा ने इस दुनिया में रखा, ताकि इंसान जन्नत का तसव्वुर कर सके। चिड़ियों का चहचहाना, चिड़ियों का उड़ना, चिड़ियों का उतरना, चिड़ियों की सूरत हर चीज़ में एक अजीब-ओ-ग़रीब कशिश है।

जन्नत : आला अफ़राद की सोसाइटी

मेरा तजुर्बा यह है कि लोगों के अंदर सबसे ज़्यादा जिस चीज़ की कमी है, वह है आर्ट ऑफ़ थिंकिंग। सही तरीक़ा यह है कि आदमी को सोचने का फ्रेमवर्क मालूम हो और इसी के मुताबिक़ वह सोचे, लेकिन लोगों का हाल यह है कि वे इस बुनियादी चीज़ से बेख़बर हैं, मुसलमान भी और ग़ैर-मुस्लिम भी। नतीजा यह है कि हर आदमी हैवान ब-शक्ल इंसान बना हुआ है। कल एक साहब से बात करते हुए मैंने कहा कि लोग आम तौर पर यह समझते हैं कि जन्नत में हूरें मिलेंगी, मगर मेरे नज़दीक जन्नत में जो सबसे ज़्यादा क़ीमती चीज़ मिलेगी, वे इंटेलेक्चुअल पार्टनर्स (Intellectual Partners) हैं। इस हक़ीक़त को क़ुरआन में इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—

وَحَسُنَ أُولٰئِكَ رَفِيقاً.

"कैसी अच्छी है उन लोगों की रफ़ाक़त।" (क़ुरआन, 4:69)

जन्नत में ऐसे इंसान मिलेंगे, जिनसे बात करके खुशी हो, जिनके अंदर आला दर्जे का आर्ट ऑफ़ थिंकिंग हो, जो हक़ीक़ी मअनों में सच्चे इंसान हों। जन्नत में यह होगा कि पूरी तारीख़ से आला इंसान चुन जमा कर दिए ज़ाएँगे। जन्नत मुंतख़ब अफ़राद की सोसाइटी होगी, जबकि मौजूदा दुनिया ग़ैर-मुंतख़ब अफ़राद का जंगल है।

सलात स्पिरिट

फ्रैंकफर्ट एयरपोर्ट (जर्मनी) पर मैंने 4 मई, 1990 को फ़ज्र की नमाज़ पढ़ी। एक जर्मन ख़ातून मेरी नमाज़ को ग़ौर से देखती रही। जब मैं फ़ारिग़ होकर उठा, तो उसने माज़रत (माफ़ी) के साथ पूछा, "क्या आप योगा का अमल कर रहे थे?" मैंने कहा, "नहीं, मैं सलात का अमल कर रहा था।" वह योगा को जानती थी, मगर वह सलात को नहीं जानती थी। उसने पूछा कि सलात क्या चीज़ है? मैंने कहा, "क्या आप ख़ुदा को मानती हैं?" उसने कहा, "हाँ!" मैंने कहा, "क्या आप मानती हैं कि

ख़ुदा हमारा ख़ालिक़ और रब है?" उसने कहा, "हाँ!" मैंने कहा, "फिर नमाज़ उसी ख़ालिक़ और मालिक की अज़मत और उसके एहसान का एतिराफ़ है। ख़ुदा सुबह लाता है, तो हम झुककर कहते हैं कि ख़ुदाया! तेरा शुक्र है कि तूने मेरे लिए दिन को रोशन किया, ताकि मैं काम करूँ। ख़ुदा शाम लाता है, तो हम झुककर कहते हैं कि ख़ुदाया! तेरा शुक्र है कि तू मेरे लिए रात लाया, ताकि मैं आराम करूँ। इस तरह हम रात और दिन में पाँच बार ख़ुदा की अज़मत और उसके इनामों का एतिराफ़ करते हैं।" जर्मन लेडी बहुत ग़ौर से मेरी बात को सुनती रही। इसके बाद वह 'थैंक यू, थैंक यू' कहती हुई चली गई।

थिंकिंग इन दि स्काई

एक हवाई सफ़र में मेरी सीट पर एक ख़ूबसूरत-सा पैमफ़्लेट था। इस पर लिखा हुआ था— आसमान में ख़रीदारी (Shopping in the Sky)। इस पैमफ़्लेट में बताया गया था कि फ़्लाइट पर आप जहाज़ की 'मार्केट' से क्या-क्या चीज़ खरीद सकते हैं। मैंने यह जुमला पढ़ा, तो मुझे ख़्याल आया कि दूसरे मुसाफ़िरों का केस अगर 'शॉपिंग इन दि स्काई' है, तो मेरा केस 'थिंकिंग इन दि स्काई' कहा जा सकता है, क्योंकि मेरा ज़ेहन हमेशा सोचने में लगा रहता है। फिर ख़्याल आया कि दुनिया का मामला भी कुछ ऐसा ही है।

दुनिया में बेशतर लोग 'शॉपिंग' को असल कारनामा समझते हैं यानी दुनिया की मार्केट में जो चीज़ें मिल रही हैं, इसका ज़्यादा-से-ज़्यादा ज़ख़ीरा अपने लिए समेट लें। कुछ लोग ज़ाहिरी माद्दी सामान खरीदते हैं और कुछ लोग अख़बारी शोहरत, अवामी मक़बूलियत, स्टेज की लीडरी को सबसे बड़ी चीज़ समझकर उसे हासिल करने की कोशिश करते हैं, मगर हक़ीक़त यह है कि सबसे बड़ी चीज़ जो इस दुनिया से हासिल की जाए, वह तदब्बुर है, जिसे क़ुरआन (3:191) में 'ज़िक्र' और 'फ़िक्र' कहा गया है। यह कुछ मख़्सूस क़िस्म के अलफ़ाज़ की तकरार नहीं है। यह दरअसल ज़ेहनी तख़्लीक़ का एक

अमल है। आदमी रोज़मर्रा के वाक़यात और मुशाहदात पर ग़ौर करके उन्हें रूहानी तजुर्बे में कन्वर्ट करता है। वह दुनिया के माद्दी वाक़यात से रब्बानी सबक़ हासिल करता है। वह आलम-ए-ज़ाहिर से एक आलम-ए-रूहानी तामीर करता है। इसी का नाम 'ज़िक्र' और 'फ़िक्र' है।

हर चीज़ इम्तिहान है

क़दीम ज़माने में शोलापुर में देवगिरी यादव का राज था। फिर वह मुस्लिम बहमनी सल्तनत का हिस्सा बन गया। इसके बाद इस पर अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया। 1947 से वह तक़सीम के बाद बनने वाले मुल्क का एक हिस्सा है। यही मतलब है क़ुरआन की इस आयत का, जिसमें अल्लाह तआला ने फ़रमाया—

> "इन अय्याम को हम लोगों के दरमियान बदलते रहते हैं।"
>
> (क़ुरआन, 3:140)

हुकूमती इक़्तिदार इस दुनिया में किसी एक गिरोह की विरासत नहीं है। यह ख़ुदा की आज़माइश के क़ानून के तहत बदलता रहता है। अल्लाह तआला कभी एक गिरोह को सियासी ग़लबा देते हैं और कभी दूसरे गिरोह को। क़ुरआन के मुताबिक़,

> "सियासी इक़्तिदार किसी गिरोह को मिले, तब भी वह उसके लिए इम्तिहान है और किसी गिरोह से सियासी इक़्तिदार छिन जाए, तब भी यह उसके लिए इम्तिहान है।" (क़ुरआन, 6:165)

आदमी को चाहिए कि दोनों हालात में वह अपनी ज़िम्मेदारियों पर ध्यान दे, न कि इक़्तिदार मिलने पर एहसास-ए-बरतरी में मुब्तला हो जाए और इक़्तिदार छिनने पर एहसास-ए-कमतरी का शिकार हो जाए।

मोमिनाना मिज़ाज

15 दिसंबर, 1992 को सुबह 8 बजे दिल्ली से बंबई का सफ़र हुआ। जहाज़ में इंडियन एक्सप्रेस (15 दिसंबर) का मुताला किया। इसमें एक

ख़बर यह थी कि भोपाल में तब्लीग़ी जमात का सालाना इज्तिमा 19-21 दिसंबर को होने वाला था। उम्मीद के मुताबिक़ इस इज्तिमे में दो लाख आदमी शरीक होते, मगर फ़सादाद की वजह से भोपाल में अभी तक कर्फ़्यू चल रहा है, इसलिए रियासती इंतिज़ामिया को फ़िक्र हुई। मध्य प्रदेश की हुक्मराँ पार्टी (बीजेपी) ने बदल के तौर पर यह तज्वीज़ किया कि इज्तिमे को मुख़्तसर और ग़ैर-नुमायाँ अंदाज़ में किया जाए और तब्लीग़ी जमात के लोग राज़ी हो गए—

As an alternative, the ruling party leaders have requested the organisers to keep it a low-key affair and they have agreed. (p.12)

यह निहायत सही फ़ैसला है। इस तरह के नाज़ुक मौक़े पर अगर इस तरह एडजस्टमेंट का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए, तो ज़्यादातर समाजी झगड़े अपने आप ख़त्म हो ज़ाएँगे। इसी मोमिनाना मिज़ाज को हदीस में इस तरह बयान किया गया है कि मोमिन की मिसाल मैदान में उगी हुई घास की मानिंद है। इधर की हवा चली, तो उधर झुक गया और उधर की हवा चली, तो इधर झुक गया। (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2810; सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 5644)

डायरी : 1986

21 मई, 1986

महमूद आलम साहब (महाराष्ट्र) अपने एक दोस्त के साथ मिलने के लिए आए। वे कई साल से 'अल-रिसाला' पढ़ते हैं। उन्होंने कहा कि मुझे आपके मिशन से इत्तिफ़ाक़ है। मुझे बताइए कि मैं अमली तौर पर इसके लिए क्या करूँ?

मैंने कहा कि सबसे पहला काम यह है कि आप 'अल-रिसाला' की एजेंसी क़ायम करें। 'अल-रिसाला' की एजेंसी हमारे यहाँ बुनियादी काम है। इससे बाक़ी कामों के इम्कानात पैदा होते हैं। उन्होंने इससे इत्तिफ़ाक़ करते हुए कहा कि मैं फ़ौरन 'अल-रिसाला' की एजेंसी शुरू कर दूँगा, मगर यह बताइए कि शाह बानो बेगम जैसे मसाइल का हल आपके नज़दीक क्या है?

मैंने कहा कि यह एक समाजी मसला है, न कि कोई क़ानूनी मसला। इस क़िस्म के मसाइल की जड़ यह है कि लोगों के ज़ेहनों में बिगाड़ आ गया है। लोगों के दिल ज़िद और इंतिक़ाम के जज़्बात से भरे हुए हैं और जिन लोगों का यह हाल हो, उनके लिए कोई क़ानून रुकावट नहीं बनता। वे एक तरफ़ से अपना रास्ता बंद देखकर दूसरी तरफ़ से अपने इंतिक़ामी जज़्बात की कार्रवाई के लिए रास्ता पा लेते हैं।

'अल-रिसाला' के ज़रिये लोगों की ज़ेहनी तामीर का काम करते हुए दूसरा काम यह करना है कि हर बस्ती में इस्लाही कमेटियाँ बनाई ज़ाएँ। इन कमेटियों के अरकान वे लोग हों, जो बस्ती में इज़्ज़तदार हैसियत रखते हैं। यह इस्लाही कमेटी बस्ती के मुसलमानों पर नज़र रखे और जिस शख़्स या ख़ानदान में कोई बिगाड़ देखे, फ़ौरन वहाँ पहुँचकर उसे पुर-अम्न अंदाज़ में हिकमत के साथ दुरुस्त करने की कोशिश करे। आप अपनी बस्ती में एक इस्लाही कमेटी बनाकर यह काम शुरू कर सकते हैं।

इस्लाही कमेटी का काम अपनी नौइयत के एतिबार से तक़रीबन वही है, जिसका ज़िक्र सीरत की किताबों में 'हल्फ़ अल-फ़ुदूल' के नाम से आता है। 'हल्फ़ अल-फ़ुदूल' इसी क़िस्म की एक इस्लाही कमेटी थी, जो मक्का के लिए बनाई गई थी। अगरचे यह नबुव्वत से पहले का वाक़या है, मगर इसकी इस्लामी अहमियत इस तरह साबित हो जाती है कि नबुव्वत के बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि

वसल्लम ने फ़रमाया कि अगर मुझे इसमें बुलाया जाए, तो मैं ज़रूर इसमें शिरकत करूँगा—

لَوْ أُدْعَى بِهِ فِي الْإِسْلَامِ لَأَجَبْتُ.

(सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 1, सफ़्हा 134)

महमूद आलम साहब ने इस्लाही कमेटी की तज्वीज़ से सद फ़ीसद इत्तिफ़ाक़ किया और कहा कि वाक़ई यही हमारे मसले का हल है।

22 मई, 1986

मेरी किताब 'ताबीर की ग़लती' पहली बार अगस्त, 1963 में छपी थी। जल्द ही इसके तमाम नुस्ख़े ख़त्म हो गए। इसके बाद मुसलसल इसका तक़ाज़ा होता रहा, मगर मैं इसे दोबारा छपवा न सका। अब अपने साथियों के इसरार पर दोबारा इसे किताबत के लिए दे दिया। आज कातिब साहब ने किताबत मुकम्मल करके इसके सफ़्हात मेरे हवाले किए हैं।

किताब दोबारा किताबत होकर सामने आई, तो माज़ी की बहुत-सी यादें ताज़ा हो गईं। इसमें से एक सूफ़ी नज़ीर अहमद कश्मीरी का तबसिरा था। वह उस वक़्त जामिया मिलिया इस्लामिया (नई दिल्ली में) में सफ़दर साहब के साथ काम करते थे। मेरी मुलाक़ात उनसे अनवर अली ख़ान सोज़ के मकान पर हुई। सूफ़ी नज़ीर अहमद कश्मीरी ने कहा कि आपकी किताब के टॉपिक्स तो तक़रीबन दुरुस्त हैं, मगर इसका नाम ग़लत है। इसका नाम होना चाहिए— 'तरतीब की ग़लती'। उन्होंने कहा कि मौलाना मौदूदी साहब की असल ख़ता यह है कि उन्होंने दीन के अज्ज़ा की तरतीब को ग़लत कर दिया है। सियासत और हुकूमत भी दीन में ज़रूरी है, मगर उसे सही तरतीब पर होना चाहिए।

जो हज़रात मौलाना मौदूदी साहब के मुख़ालिफ़ हैं (मसलन अमीन अहसन इस्लाही, मौलाना अबू अल-हसन अली नदवी, डॉक्टर इसरार

अहमद), इन सबका केस यही है। वे लोग मुमकिन है कि सद फ़ीसद सूफ़ी नज़ीर अहमद वाले अलफ़ाज़ न बोलें, मगर अमलन सबका ज़ेहन वही है, जिसकी नुमाइंदगी 'तरतीब की ग़लती' के फ़िक़रा से होती है।

मैं ज़ाती तौर पर इस नज़रिये को ग़लत समझता हूँ। मैं समझता हूँ कि ये हज़रात अपने आपको सियासत के ख़ोल से बाहर न निकाल सके। दूसरी तरफ़ मौलाना मौदूदी की फ़िक्र उन्हें दुरुस्त भी नज़र नहीं आती। इन दोतरफ़ा तक़ाज़ों की ततबीक़ (comparison) उन्होंने इस तरह की कि उन्होंने कह दिया कि मौलाना मौदूदी की फ़िक्र बज़ात-ए-ख़ुद ग़लत नहीं। अलबत्ता उन्होंने दीन के हिस्सों की तरतीब को ग़लत कर दिया। हालाँकि 'तरतीब' एक इज़ाफ़ी लफ़्ज़ है। तहरीकों में कभी जामिद तरतीब नहीं हुआ करती।

23 मई, 1986

आज के अख़बार में फ्रंट पेज पर एक तस्वीर छपी है। (मेरे सामने इस वक़्त हिंदुस्तान टाइम्स; 23 मई, 1986 है)। इस तस्वीर में दिखाया गया है कि गुरुद्वारा बँगला साहिब (नई दिल्ली) के सामने विज़िटर्स के बहुत-से जूते और चप्पल रखे हुए हैं और पंजाब के मौजूदा चीफ़ मिनिस्टर मिस्टर सुरजीत सिंह बरनाला कपड़ा लेकर जूतों की सफ़ाई कर रहे हैं। तस्वीर के नीचे ये अलफ़ाज़ दर्ज हैं—

Punjab Chief Minister, Surjit Singh Barnala dusting shoes at the Bangla Sahib Gurdwara in New Delhi on Thursday. (May 23, 1986)

अख़बार की रिपोर्ट में बताया गया है कि चीफ़ मिनिस्टर ने महज़ फॉर्मेलिटी के तौर पर यह काम नहीं किया, जैसे हमारे अकसर लीडर दरख़्त लगाते हैं, बल्कि उन्होंने पूरी मेहनत और संजीदगी के साथ जूतों और चप्पलों की सफ़ाई की। 30 मिनट में उन्होंने तक़रीबन 100 ज़ायरीनों के जूते साफ़ किए।

मिस्टर बरनाला पंजाब के चीफ़ मिनिस्टर थे। वे इसके लिए मजबूर नहीं थे कि अकाल तख़्त के फ़ैसले के मुताबिक़ आम आदमी की तरह जूतों की सफ़ाई करें, मगर रद्द करने का इख़्तियार रखते हुए भी उन्होंने इस फ़ैसले को क़ुबूल कर लिया।

इस मामले का सबसे अहम पहलू यह है कि मिस्टर बरनाला ने अकाल तख़्त के फ़ैसले को क़ुबूल करके अपनी क़ौम की मज़हबी रिवायत को बचा लिया। अगर वे इस फ़ैसले को मानने से इनकार कर देते, जबकि इस तरह के मामलों में हमारे दूसरे लीडर करते हैं, तो सदियों से क़ायम-शुदा रिवायत टूट जाती।

मौजूदा ज़माने में 40 से ज़्यादा इस्लामी मुल्क हैं, मगर कहीं भी मुसलमानों में ऐसे लीडर नहीं हैं, जो रिवायत को क़ायम रखने के लिए इस तरह अपनी ज़ात की क़ुर्बानी दे सकें। हर मुस्लिम लीडर का यह हाल है कि जब भी उसकी अपनी ज़ात ज़द में आती है, वह फ़ौरन रिवायत को तोड़ देता है। इसका नतीजा यह है कि आज मुस्लिम मुल्क में कोई सलाहियत बाक़ी नहीं रही। हर चीज़ इज़ाफ़ी बनकर रह गई है।

24 मई, 1986

आज हामिद सरवरी हैदराबादी (पैदाइश : 1941) मिलने के लिए आए। हैदराबाद के फ़साद में वे सख़्त ज़ख़्मी हुए थे और कई महीनों के इलाज के बाद दुबारा सेहतमंद हुए। इस फ़साद में उनकी दुकान भी लुट गई। ताहम मैंने देखा कि वे मनफ़ी ज़ेहन के शिकार नहीं हुए। इस तल्ख़ तजुर्बे के बावजूद उन्होंने हक़ीक़त-पसंदाना तर्ज़-ए-फ़िक्र को नहीं खोया।

गुफ़्तुगू के दौरान मैंने कहा कि हिंदुस्तान में फ़सादात का सबब 50 फ़ीसद मस्जिदों के स्पीकर हैं। अगर मस्जिदों से लाउड स्पीकर हटा दिए जाएँ, तो इस मुल्क का आधा फ़साद ख़त्म हो जाए। मैंने कहा कि यह बात मैं अपनी राय के तहत नहीं कह रहा हूँ, बल्कि हदीस की बुनियाद पर कह रहा हूँ।

इमाम तिर्मिज़ी ने हज़रत अबू हुरैरा की एक लंबी रिवायत नक़ल की है। इस रिवायत को आप मिश्कात अल-मसाबीह में अलामात-ए-क़ियामत के बाब में भी देख सकते हैं। इस हदीस में क़यामत के नज़दीक से पहले के बिगाड़ का ज़िक्र है। बिगाड़ की जो अलामतें हदीस में बताई गई हैं, उनमें से एक यह है—

وظهرَتِ الأَصْواتُ في المَساجِدِ.

"और मस्जिदों में आवाज़ें बुलंद होंगी।"

(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2358)

मैं समझता हूँ कि इन अलफ़ाज़ में इसी फ़ितने की पेशीनगोई की गई है, जिसे मौजूदा ज़माने में लाउड स्पीकर कहते हैं। चूँकि हिंदुस्तान में हिंदू मुस्लिम आबादियाँ मिली-जुली हैं, इसलिए मस्जिदों के लाउड स्पीकर की आवाज़ें हिंदुओं तक पहुँचती हैं और उन्हें बराबर ग़ुस्सा दिलाती रहती हैं। वे हमारे ख़िलाफ़ मुस्तक़िल टेंशन में रहते हैं और जब मौक़ा पाते हैं, मारपीट शुरू कर देते हैं।

हामिद सरवरी साहब ने कहा कि मैं अपने तजुर्बे की रोशनी में तस्दीक़ करता हूँ कि आप बिलकुल सही कह रहे हैं। हैदराबाद में धूलपेट की मस्जिद में ऐसा ही हुआ। वहाँ हमने लाउड स्पीकर लगाया और हिंदुओं के एतराज़ के बावजूद हमने लाउड स्पीकर बंद नहीं किया, यहाँ तक कि छः महीने के बाद फ़साद हो गया।

25 मई, 1986

श्रीलंका के उत्तरी हिस्से में एक बस्ती है, जिसका नाम है—तेल्लीप्पलाई। यहाँ दुर्गा देवी का एक मंदिर है। पिछले साल यह वाक़या हुआ कि इस मंदिर में चोरी हुई और कई लाख रुपये के ज़ेवरात चोरी हो गए, जो कि देवी जी ने पहने हुए थे।

चोरी के एक साल बाद 24 मई, 1986 को यह वाक़या हुआ कि लोगों ने देखा कि मंदिर के दरवाज़े पर एक बड़ा-सा बैग रखा हुआ है। इस बैग को खोला गया, तो इसके अंदर वे तमाम ज़ेवरात मौजूद थे, जो एक साल पहले चोरी किए गए थे। ज़ेवरों का यह बैग फ़ौरन मंदिर के बोर्ड ऑफ़ ट्रस्टीज़ के हवाले कर दिया गया।

इस चोरी के बाद आम तौर पर यह कहा जा रहा था कि इसकी ज़िम्मेदार तमिल ईलम लिबरेशन ऑर्गेनाइज़ेशन (TELO) है। इस चोरी के बाद मज़कूरा तंज़ीम को ज़बरदस्त नुक़सान का सामना करना पड़ा। चुनाँचे उन्होंने ज़ेवरात को वापस कर दिए। रिपोर्ट (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 25 मई, 1986, सफ़्हा 8) में कहा गया है—

The local people, who had accused the Tamil Eelam Liberation Organisation of the robbery, believe the group had now returned the jewellery because they felt that it was goddess Durga's wrath over the theft of her ornaments that brought about their group's near elimination in recent bloody clashes with the rival Liberation Tigers of Tamil Eelam (LTTE).

मज़कूरा गिरोह ने ज़ेवरात को इसलिए वापस कर दिया, क्योंकि उनका ख़्याल था कि देवी दुर्गा इस चोरी की वजह से उन पर ग़ज़बनाक हो गईं और उन्हें अपने हरीफ़ गिरोह के मुक़ाबले में ज़बरदस्त नुक़सान उठाना पड़ा।

मुसलमानों के साथ भी इसी तरह के वाक़यात पेश आते हैं। उनका एक आदमी ज़ुल्म करता है और उसके बाद ख़ुदा उसे तंबीही सज़ा में मुब्तला कर देता है, मगर वह नहीं चौंकता। मौजूदा ज़माने में शायद मुसलमानों का दिल उन लोगों से भी ज़्यादा सख़्त हो गया है, जो

ख़ुदा पर ईमान नहीं रखते। गोया उनकी इस हालत पर क़ुरआन के ये अलफ़ाज़ चस्पा होतें (apply) हैं—

> "फिर उसके बाद तुम्हारे दिल सख़्त हो गए। पस वे पत्थर की मानिंद हो गए या उससे भी ज़्यादा सख़्त।" (क़ुरआन, 2:74)

26 मई, 1986

हिंदुस्तान टाइम्स (26 जनवरी, 1986) में सफ़हा 9 पर एक मज़मून है, जिसका उनवान है—

Benazir Bhutto and Rajiv Gandhi

इस मज़मून को लिखने वाले मिस्टर भाबीनी सेन गुप्ता हैं। मज़मून इन अलफ़ाज़ से शुरू होता है—

> "…InshaAllah, if Benazir Bhutto becomes prime minister of Pakistan"

इस तरह इस मज़मून में एक से ज़्यादा बार इंशा अल्लाह का लफ़्ज़ आया है। यह कोई अनोखी बात नहीं है। बहुत-से ग़ैर-मुसलमान अपनी गुफ़्तुगू और तक़रीर में इंशा अल्लाह का लफ़्ज़ बोलते हैं और इसी तरह दूसरे इस्लामी अलफ़ाज़ भी।

इस्लाम की यह अजीब ख़ुसूसियत है कि उसने हर मामले में ऐसी चीज़ें दी हैं, जिनका कोई बदल नहीं। इस तरह रोज़मर्रा की गुफ़्तुगू में बोलने के लिए इस्लाम ने जो अलफ़ाज़ दिए हैं, आज भी उनसे बेहतर अलफ़ाज़ किसी दूसरी तहज़ीब ने इंसान को नहीं दिए, मसलन— मुलाक़ात के वक़्त 'अस्सलामु अलैकुम' कहना। कोई ख़ुशी की बात हो तो 'अलहम्दुलिल्लाह' कहना, किसी काम का इरादा करते हुए 'इंशा अल्लाह' कहना, किसी का अच्छा काम देखकर 'माशा अल्लाह' कहना, किसी का एतिराफ़ करना हो, तो 'बारक अल्लाह' कहना वग़ैरह।

यही हर मामले में है, मसलन— मौत के बाद इस्लाम में जिस तरह कफ़न-दफ़न किया जाता है, उससे बेहतर तरीक़ा किसी क़ौम में मौजूद नहीं और निकाह का तरीक़ा जो इस्लाम में रखा गया है, उससे बेहतर तरीक़ा सोचा नहीं जा सकता।

इस्लाम के तरीक़े निहायत सादा हैं और इसी के साथ निहायत ब-मअनी, मगर मुसलमानों ने अपने तकल्लुफ़ात के इज़ाफ़े से इस्लाम की कशिश को नुक़सान पहुँचाया है। हक़ीक़त यह है कि मौजूदा ज़माने में मुसलमान इस्लाम का पर्दा बन गए हैं। इस्लाम और दूसरी क़ौमों के दरमियान मुसलमान रुकावट बन गए हैं। इस्लाम और दूसरी क़ौमों के बीच मुसलमान ही आड़ बन गए हैं।

27 मई, 1986

आज के अख़बारों (टाइम्स ऑफ़ इंडिया, इंडियन एक्सप्रेस; 27 मई, 1986) में एक दिलचस्प ख़बर छपी है—

A helicopter touched down today at La Sante prison in Paris, picked up a prisoner from the rooftop of the jail and then (took) him out in a daring daylight escape. The escapee was identified as Michel Vaujour, 34, who was convicted on March 8, 1985, for armed robbery.

पेरिस की जेल में एक 34 साला शख़्स क़ैद था। लूटमार के जुर्म में 8 मार्च, 1985 को उसे 18 साल की सज़ा हुई थी। 26 मई, 1986 को साढ़े दस बजे दिन में एक हेलीकॉप्टर उड़ता हुआ जेल की फ़िज़ा में आया। वह उसकी एक छत पर उतरा और मज़कूरा क़ैदी को लेकर उड़ गया। यह पूरी कार्रवाई सिर्फ़ 5 मिनट के अंदर मुकम्मल हो गई। फ़रार क़ैदी का नाम मिशेल वॉजौर बताया गया है।

मग़रिब के तरक़्क़ी-याफ़्ता मुल्कों में कोई शख़्स इसी तरह से हेलीकॉप्टर किराये पर ले सकता है, जिस तरह हिंदुस्तान में कार किराये पर हासिल की जा सकती है। चुनाँचे एक 30 साला औरत ने एक तिजारती इदारा एयर कंटिनेंट (Air Continent) से एक हेलीकॉप्टर किराये पर लिया। वह ख़ुद इसे उड़ाते हुए जेल के ऊपर पहुँची और तय-शुदा प्रोग्राम के मुताबिक़ क़ैदी को लेकर फ़रार हो गई।

मौजूदा दुनिया में कामयाबी का एक ख़ास राज़ यह है कि बिलकुल अचानक ऐसा क़दम उठाया जाए, जिसके मुताल्लिक़ सामने वाला फ़ौरी तौर पर कुछ न सोच सके। वह वो सिर्फ़ उस वक़्त बेदार हो, जबकि कार्रवाई कामयाबी की हद तक मुकम्मल हो चुकी हो।

28 मई, 1986

पीटर बेनेंसन (Peter Benenson, Born : 1921) ने बड़े जज़्बाती अंदाज़ में 25 साल पहले एक मज़मून लिखा था, जो लंदन के अख़बार 'ऑब्ज़र्वर' (The Observer) में 28 मई, 1961 को छपा था। इसका उनवान यह था—

The Forgotten Prisoners

मज़मून सियासी क़ैदियों (political prisoners) के बारे में था। इसमें कहा गया था कि बेशुमार लोग सारी दुनिया में महज़ अपने मुख़्तलिफ़ अक़ीदे या नज़रियात की बिना पर सख़्त सज़ाएँ पा रहे हैं।

Open your newspaper - any day of the week - and you will find a report from somewhere in the world of someone being imprisoned, tortured or executed because his opinions or religion are unacceptable to his government.

उन्होंने इसके ख़िलाफ़ सख़्त प्रोटेस्ट किया और कहा कि नज़रिया और अक़ीदा या इसके प्रचार पर किसी क़िस्म की भी पाबंदी नहीं होनी चाहिए, सिवा इसके कि आदमी तशद्दुद का तरीक़ा इख़्तियार करे। इस मज़मून की ताईद में दूसरे लोगों ने भी मज़ामीन शाए किए और बिल-आख़िर वह इदारा वजूद में आया, जिसे 'एम्नेस्टी इंटरनेशनल' (Amnesty International) कहा जाता है। इस वक़्त 150 मुल्कों में इसके पाँच लाख मेंबर हैं। इसका सदर दफ़्तर लंदन में है।

एम्नेस्टी इंटरनेशनल इस बात की मिसाल है कि इंसान हदों को नहीं मानता। वह एक चीज़ और दूसरी चीज़ का फ़र्क़ नहीं समझ सकता। एम्नेस्टी इंटरनेशनल ने सियासी क़ैदियों को अज़ाब देने के ख़िलाफ़ जो आवाज़ बुलंद की है, वह निहायत दुरुस्त है। इसके सही होने में कलाम नहीं, मगर इंसानी हुक़ूक़ (human rights) के तहफ़्फ़ुज़ का तसव्वुर उसे यहाँ तक ले गया कि वह अख़्लाक़ी जुर्म में भी फाँसी की सज़ा के ख़िलाफ़ हो गया, इसलिए कि वह इंसानी अज़मत (human dignity) के ख़िलाफ़ है। वह ग़ैर-इंसानी और नाक़ाबिल वापसी सज़ा है—

Inhuman and irrevocable punishment

एम्नेस्टी इंटरनेशनल का मुतालिबा है कि सज़ा-ए-मौत (death penalty) को मुकम्मल तौर पर ख़त्म कर दिया जाए।

यह दूसरा मुतालिबा बिला-शुब्हा ग़लत है। सियासी जुर्म और अख़्लाक़ी जुर्म में लाज़िमन फ़र्क़ किया जाना चाहिए। फिर यह कि बाज़ अख़्लाक़ी जुर्म ऐसे हैं, जिनके लिए ज़रूरी है कि इसके मुजरिम को ऐसी सज़ा दी जाए, जो लोगों में दहशत (deterrence) पैदा करे, जो दूसरों के लिए इबरतनाक हो जाए। इसी मस्लहत की बिना पर शदीद अख़्लाक़ी जराइम के लिए मौत की सज़ा होना उतना ही ज़रूरी है, जितना कि दूसरे कमतर जराइम के लिए मौत की सज़ा न होना। (टाइम्स आफ़ इंडिया; 28 मई, 1986)

29 मई, 1986

'अल-उम्मह' क़तर का अरबी माहनामा है। इसके महानामा मई, 1986 में डॉ. अहमद कमाल अबुलमज्द का एक मज़मून (सफ़हा 65) छपा है। डॉक्टर साहब अरब के मशहूर राइटर हैं।

मज़कूरा मज़मून का ख़ुलासा यह है कि अगले सालों में हमारा मसला तरक़्क़ी और पिछड़ेपन का मसला नहीं है, बल्कि उम्मत-ए-अरबिया की निस्बत से यह वजूद और ज़वाल का मसला है। उम्मत-ए-अरबिया को इसकी जड़ में ख़तरा दरपेश है। अगर यह मामला इसी तरह जारी रहा, तो अंदेशा है कि अरब और मुसलमान एक क़िस्म के ग़ुलाम बनकर रह जाएँगे, क्योंकि इंसानी तहज़ीब के बनाने में उनका कोई हिस्सा नहीं। जदीद इंसानी तारीख़ में उनके लिए इज़्ज़त और सरदारी का कोई मक़ाम बाक़ी नहीं रहेगा।

इसके मुक़ाबले में 'अलराद' रियाद से निकलने वाला हफ़्त रोज़ा है। इसकी इशाअत 5 मई, 1986 को सफ़हा 11 पर एक मज़मून है, जिसका उनवान है—

अल-इस्लाम यंतशिरु वा यंतसिरु
यानी इस्लाम फैलता है और फ़तह-याब होता है।

इस दूसरे मज़मून के राइटर डॉ. अब्दुल क़ादिर ताश हैं। उन्होंने दिखाया है कि मौजूदा ज़माने में दूसरे मज़ाहिब के अफ़राद की तादाद घट रही है और अहले-इस्लाम की तादाद बराबर बढ़ रही है।

एक ही वक़्त में दो अरब मज़मून-निगार मौजूदा ज़माने में इस्लाम की अलग-अलग तस्वीरें पेश कर रहे हैं। एक इस्लाम को पीछे जाता हुआ दिखाई दे रहा है। दूसरे को इस्लाम आगे जाता हुआ नज़र आ रहा है।

इस फ़र्क़ की वजह नज़रियात का फ़र्क़ है। अव्वलुज़्ज़िकर ने इस्लाम को तहज़ीब की निस्बत से देखा और दूसरे ने दावत की निस्बत से। तहज़ीब की निस्बत से आज यक़ीनन अहले-इस्लाम पीछे हैं, मगर

ऐन उसी वक़्त इस्लाम अपनी तालीम के एतिबार से इंसानों के दिलों में जगह बनाता जा रहा है।

'तहज़ीब' के एतिबार से देखा जाए, तो इस्लाम पीछे जा रहा है और 'दावत' के एतिबार से देखा जाए, तो इस्लाम आगे जा रहा है। फिर क्यों न उसी मैदान में अपनी कोशिशों को वक़्फ़ कर दिया जाए, जिसमें आज भी इस्लाम की पेशक़दमी के लिए तमाम दरवाज़े खुले हुए हैं।

30 मई, 1986

सिमोन डी बोउवा (Simone de Beauvoir, Born: 1908) पेरिस में पैदा हुई। 1986 में 78 साल की उम्र में उसका इंतिक़ाल हो गया। यूरोप की आज़ादी-ए-निस्वाँ (women's liberation movement) की हामी ख़वातीनों में उनका नाम सबसे ऊपर है।

वह शादी के तरीक़े की सख़्त ख़िलाफ़ थी। उसके नज़दीक शादी का तरीक़ा औरत को दूसरे दर्जे का इंसान बनाने के हम-मअना है। उसने ऐलान के साथ कई मर्दों के साथ ज़िंदगी गुज़ारी और उसने कभी निकाह नहीं किया और न ही बच्चे पैदा किए। औरतों की आज़ादी के बारे में उसकी मशहूर किताब फ़्रांसीसी ज़बान में 1949 में छपी थी। इस किताब का अंग्रेज़ी तर्जुमा The Second Sex के नाम से 1953 में शाए हुआ।

सिमोन डी बोउवा ने अपनी ऑटोबायोग्राफ़ी (Autobiography) भी शाए की है। इसमें वह लिखती है कि उसके ईसाई मोहौल ने उसे एहसास-ए-कमतरी (inferiority complex) में मुब्तला कर दिया था। औरत होना उसे कमतर दर्जे की बात लगता था, लेकिन उसने यह पसंद नहीं किया कि वह औरत या बीवी बनकर रहे—

Her Christian background had imposed upon her an inferiority complex about being a woman. But she did not want to be a woman or a wife.

एक हद तक यह बात कहना सही होगा कि यूरोप में औरतों की आज़ादी की तहरीक ईसाइयत के रिएक्शन में शुरू हुई। ईसाई अक़ीदा औरत को इंसान की गुनाह-गारी का सबब बताता है। इस बिना पर ईसाइयत में औरत की तस्वीर एक हद तक क़ाबिल-ए-नफ़रत बनकर रह गई है। इसी के रिएक्शन में औरतों की आज़ादी की तहरीक शुरू हुई, मगर यह एक हद से दूसरी हद पर जा पहुँची। एक बुराई को ख़त्म करने के नाम पर इसने दूसरी बुराई पैदा कर दी।

31 मई, 1986

सय्यद मुहाजिर हुसैन (बीड, महाराष्ट्र) मिलने के लिए आए। वे इंजीनियर हैं और दीनी जज़्बे के तहत आजकल अरबी पढ़ रहे हैं। तक़रीबन 4 साल से 'अल-रिसाला' का मुताला कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि मुझे आपकी फ़िक्र से इत्तिफ़ाक़ है। अलबत्ता एक बात समझ में नहीं आई और वह ज़िक्र के बारे में है। आप अकसर 'अल-रिसाला' में लिखते हैं कि ज़िक्र एक मानवी हक़ीक़त है, न कि महज़ लफ़्ज़ी तकरार। उन्होंने कहा कि मैं आपकी इस बात को मानता हूँ, मगर सूफ़ियों का कहना है कि बार-बार अलफ़ाज़ की तकरार से आदमी के अंदर उसकी रूह भी पैदा हो जाती है। क्या यह दुरुस्त नहीं?

मैंने कहा कि यह ऐसी ही बात है, जैसे ये कहा जाए कि फ़िक़्ह (islamic jurisprudence) की किताबों को रटकर दोहराओ, तो इससे तुम्हारे अंदर गहरी समझ पैदा हो जाएगी।

मिसाल के तौर पर 'अल-मुवाफ़क़ात' अल्लामा शातिबी की मशहूर किताब है। यह उसूल-ए-फ़िक़्ह पर है। अगर इस पर क़ुरआन की तरह ऐराब लगा दिए जाएँ यानी हर हर्फ़ और हर लफ़्ज़ पर ज़ेर, ज़बर, पेश वग़ैरह अलामतें लगी हुई हों, तो कोई भी उर्दू जानने वाला इसे पढ़ सकता है। अब बताइए कि एक शख़्स जो मअनी की समझ न रखता

हो और 'अल-मुवाफ़क़ात' पर ज़ेर-जबर लगाकर उसे रोज़ाना दोहराता है, तो क्या वह फ़क़ीह बन जाएगा। ज़ाहिर है कि यह नामुमकिन है। इसी तरह यह भी नामुमकिन है कि लफ़्ज़ी ज़िक्र से मानवी ज़िक्र वाली कैफ़ियतें आदमी के अंदर हों।

ज़िक्र हक़ीक़तन मारिफ़त-ए-ख़ुदावंदी के ज़ेरे-असर निकले हुए अलफ़ाज़ का नाम है, न कि महज़ ज़ुबान से की जाने वाली बे-रूह लफ़्ज़ी तकरार।

1 जून, 1986

टाइम्स ऑफ़ इंडिया (29 मई, 1986) के सफ़्हा 3 पर एक इश्तिहार नज़र से गुज़रा। एक हिंदू नौजवान अपने घर से भाग गया। उसके बाप ने बा-तस्वीर इश्तिहार शाए किया है कि इस शक्ल का बच्चा घर से भाग गया है। जिन साहब को मिले, वह उसे हमारे ग़ाज़ियाबाद के पते पर पहुँचा दे।

लड़के का नाम दिनेश है और उसके पिता का नाम राजेंद्र कुमार है। इश्तिहार हिंदी स्क्रिप्ट में छपा है, मगर उसकी बनावट तक़रीबन उर्दू जैसी है। इश्तिहार के अलफ़ाज़ ये हैं—

गुमशुदा की तलाश

प्रिय दिनेश! तुम जहाँ भी हो, शीघ्र ही घर चले आओ। घर पर सभी बेहद परेशान हैं। तुम्हारी मम्मी की हालत चिंताजनक है।

मुसलमान आम तौर पर यह शिकायत करते हैं कि हिंदुस्तान से उर्दू ख़त्म की जा रही है, मगर यह बात सिर्फ़ जुज़ई तौर पर सही है। इसकी एक मिसाल ऊपर का इश्तिहार है।

यह सही है कि नए हिंदुस्तान में उर्दू रस्म-उल-ख़त का इस्तेमाल कम हो रहा है, मगर जहाँ तक उर्दू ज़बान का ताल्लुक़ है, वह बदस्तूर

बड़ी हद तक ज़िंदा है। न सिर्फ़ फ़िल्म और टेलीविज़न में, बल्कि हिंदी अख़बारों में भी एक हद तक वही ज़बान होती है, जिसे हम उर्दू ज़बान कहते हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि हम इस ज़बान को उर्दू रस्म-उल-ख़त (लिपि) में लिखते हैं और बिरादरान-ए-वतन उसे हिंदी रस्म-उल-ख़त में लिखना पसंद करते हैं।

यह एक हक़ीक़त है कि बोलने और समझने की हद तक उर्दू ज़बान हिंदुस्तान में पूरी तरह बाक़ी है। ऐसी हालत में मुसलमानों के करने का एक काम यह है कि वे इस्लाम की तालीमात को हिंदी रस्म-उल-ख़त में छापकर कसीर तादाद में फैलाएँ। साधारण उर्दू ज़बान हर हिंदू समझ सकता है, बशर्ते के हिंदी रस्म-उल-ख़त में लिखी गई हो।

2 जून, 1986

उस्ताद बुंदू ख़ान (1880-1955) मशहूर फ़नकार थे। उनका काम सारंगी बजाना था। इस फ़न में उन्होंने ग़ैर-मामूली शोहरत हासिल की। पार्टीशन से पहले का वाक़या है। एक बार उस्ताद बुंदू ख़ान को बताया गया कि मुहम्मद अली जिन्ना पर किसी शख़्स ने क़ातिलाना हमला किया है। उन्होंने यह ख़बर सुनकर कहा—

"क्या करते हैं वे, गाते हैं कि बजाते हैं?"

इस वाक़ये का ज़िक्र करते हुए मिस्टर आर०एन० वर्मा लिखते हैं—

> "It certainly showed Bundu Khan's total devotion to music. His unconcern for anything else was so complete that he did not even know who Jinnah was."

यह यक़ीनी तौर पर बताता है कि बुंदू ख़ान ने अपने आपको म्यूज़िक के लिए बिलकुल वक़्फ़ कर दिया था। दूसरी चीज़ों में उनकी

बे-ताल्लुक़ी इतनी मुकम्मल थी कि वे यह भी नहीं जानते थे कि जिन्ना कौन हैं। (हिंदुस्तान टाइम्स; 31 मई, 1986)

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि किसी भी चीज़ में कमाल पैदा करने के लिए सबसे ज़्यादा ज़रूरत किस चीज़ की होती है। वह है अपने आपको उसके लिए वक़्फ़ कर देना। किसी फ़न या किसी काम में कमाल का दर्जा हासिल करने के लिए यह वाहिद लाज़िमी शर्त है। इसके बग़ैर कोई शख़्स आला दर्जा हासिल नहीं कर सकता।

आदमी जब किसी चीज़ में इतना गुम हो जाए कि उसके सिवा हर चीज़ उसकी नज़र से ओझल हो जाए, उसी वक़्त उसे उस चीज़ में कमाल का दर्जा हासिल होता है।

3 जून, 1986

आँख इंसानी जिस्म का बेहद नाज़ुक हिस्सा होता है। इसका ऑपरेशन बहुत ज़्यादा नाज़ुक काम है। आँख के कुछ ऑपरेशन ऐसे थे, जो मौजूदा रिवायती इंस्ट्रूमेंट्स (instruments) के ज़रिये नहीं किए जा सकते थे।

इस सिलसिले में रूस के डॉक्टर फ्योदोरोव (Svyatoslav Fyodorov) पिछले दस साल से तहक़ीक़ कर रहे थे। इस सिलसिले में उन्होंने एक गणित का मॉडल (mathematical model) बनाया, कंप्यूटर की तकनीक से मदद ली। आख़िरकार उन्होंने एक नई बेहद तेज़ छुरी (super sharp knife) तैयार करने में कामयाबी हासिल कर ली। यह छुरी स्टील के बजाय हीरे से तैयार की जाती है और यह मौजूदा सर्जरी की छुरियों से सौ गुना ज़्यादा तेज़ है।

Super thin diamond knife, is one hundred times sharper than the edge of an ordinary razor blade.

क़दीम ज़माने में ग़ालिबन धारदार हथियार के तौर पर आदमी के पास जो चीज़ होती थी, वह नुकीला पत्थर था। इसके बाद लोहे के

धारदार औज़ार बनने लगे। फिर इसके बाद स्टील का ज़माना आया और रेज़र ब्लेड जैसी चीज़ बनाना मुमकिन हो गया, मगर इंसान की ज़रूरतें इससे भी ज़्यादा तेज़ औज़ार की तालिब थीं। अल्लाह तआला को इंसान की इस ज़रूरत की ख़बर थी। उसने पहले ही हीरा पैदा कर दिया। हीरा अगरचे महज़ कार्बन का मजमूआ है, लेकिन इसके अंदर ग़ैर-मामूली हद तक सख़्ती रखी गई है। यह सिर्फ़ हीरे के लिए मुमकिन है कि उसकी धार को रेज़र से सौ गुना ज़्यादा तेज़ किया जा सके।

दौर-ए-ज़वाल की अलामत

सब्र क्या है? सब्र का मतलब यह है कि आदमी दुनिया में सेल्फ़ डिसिप्लिन (self-discipline) की ज़िंदगी गुज़ारने लगे। वह अपनी ख़्वाहिशों पर रोक लगाए। वह लोगों के दरमियान 'नो प्रॉब्लम' (no problem) इंसान बनकर रहे। सच्चे मोमिन की एक अलामत सेल्फ़ डिसिप्लिन है।

सेल्फ़ डिसिप्लिन से दूर करने की बहुत-सी चीज़ें हैं, मसलन— एक सुनी हुई बात को तहक़ीक़ के बिना दूसरों से बयान करना, तकल्लुफ़ का तरीक़ा इख़्तियार करना, दूसरे इंसानों को धक्का देकर आगे बढ़ना, मजलिस में हँसना और मज़ाक़ उड़ाना, एक आदमी बोल रहा हो, तो उसकी बात ख़त्म होने से पहले बोलना, वादा करने के बाद उसे पूरा न करना, ग़ैर-संजीदा गुफ़्तुगू करना, मनफ़ी रवैया इख़्तियार करना, एक-दूसरे पर फ़ख़्र करना, बातचीत में लापरवाही का अंदाज़ इख़्तियार करना, दलील के बजाय ऐब-जोई की ज़बान बोलना, ज़्यादा बोलना या ज़ोर-ज़ोर से बोलना, ख़ाना और पानी बरबाद करना वग़ैरह।

मसलन इंडिया के एक आलिम ने शाम का सफ़र किया। वहाँ उनके लिए एक दावत का एहतिमाम किया गया। वहाँ ख़ाने के बहुत सारे

आइटम थे, लेकिन 'शामी कबाब' मौजूद नहीं था। आलिम ने तफ़रीही (मज़ाकिया) अंदाज़ में कहा—

> "आपके यहाँ ख़ाने में बहुत-सी चीज़ें मौजूद थीं, लेकिन वह चीज़ मौजूद न थी, जिसे आपके नाम से मंसूब करके शामी कबाब कहते हैं।"

इस पर लोग हँस पड़े। घर के मालिक ने माज़रत का इज़हार किया।

सेल्फ़ डिसिप्लिन की सिफ़त का न होना दौर-ए-ज़वाल की अलामत है। ज़वाल के दौर में उम्मत के अंदर जो ख़राबी पैदा होती है, वह दीन की असल रूह का ख़त्म हो जाना और दीन की ज़ाहिरी शक्लों का बाक़ी रहना। इस तफ़रीक़ (separation) का नतीजा यह होता है कि उम्मत के दरमियान बज़ाहिर दीन के नाम पर तरह तरह की सरगर्मियाँ दिखाई देती हैं, लेकिन दीन अपनी हक़ीक़त के एतिबार से अमलन मौजूद नहीं होता। इसका नतीजा यह होता है कि ज़ाहिरी दीन-दारी के बावजूद मुसलमान बे-उसूल ज़िंदगी गुज़ारते हैं। इसी बे-उसूल ज़िंदगी को मज़हबी ज़बान में बे-सब्री की रविश कहा जाता है।

छोटा आग़ाज़

एक साहब से मुलाक़ात हुई। दौरान-ए-गुफ़्तुगू उन्होंने इंतिहाई शिद्दत के साथ कहा, "अब हमें अपना मसला ख़ुद हल करना होगा।" मैंने कहा कि इस क़िस्म के अलफ़ाज़ महज़ अल्फ़ाज़ हैं, जिनके कोई मायने नहीं, क्योंकि इस्तेमाल से पहले सलाहियत-ए-इस्तेमाल दरकार होती है और वह हमारे अंदर मौजूद नहीं। कोई अमली मंसूबा पहले एक मुवाफ़िक ज़मीन चाहता है। ज़रूरी हद तक तैयारी (preparation) के बग़ैर क़दम उठाने के मंसूबे बनाना ऐसा ही है, जैसे पुल बनने से पहले उस पर गाड़ी को चला देना।

यह सुनकर उन्होंने कहा, "इस अंदाज़ में सोचने वाले और कितने लोग हैं?" मैंने कहा कि यही तो मसला है। फ़िलहाल ऐसे लोग ज़रूरी तादाद से बहुत कम हैं, इसीलिए हमें पहली कोशिश इसी की करनी है। फिर मैंने बे-तकल्लुफ़ी के अंदाज़ में कहा कि 'अल-रिसाला' में इसी मिज़ाज को पैदा करने की कोशिश की जा रही है, मगर आप लोग उसकी रीडरशिप को बढ़ाने के लिए तआवुन नहीं करते।

"आपने भी कहाँ की बात कहाँ जोड़ दी," उन्होंने कहा। मतलब यह कि कहाँ इतना बड़ा आलमी मसला और कहाँ 'अल-रिसाला'। हक़ीक़त यह है कि हमारी नाकामी की सबसे बड़ी वजह हमारा यही मिज़ाज है। आग़ाज़ जब भी होगा, छोटा होगा; मगर हम 'छोटे आग़ाज़' से शुरू करना नहीं चाहते, इसलिए हम आग़ाज़ भी नहीं कर पाते। हक़ीक़त यह है कि इब्तिदाई तैयारियों से पहले आगे का काम नहीं किया जा सकता और इब्तिदाई तैयारी हमेशा छोटे आग़ाज़ से शुरू होती है।

छोटे आग़ाज़ का मतलब है— लो प्रोफाइल (low profile) में काम का आग़ाज़ करना। इस तरीक़े-कार का फ़ायदा यह है कि आदमी को फ़ौरन ही अपने अमल के लिए एक नुक्ता-ए-आग़ाज़ (starting point) मिल जाता है। आदमी को यह मौक़ा मिल जाता है कि वह शुरू से आख़िर तक अपना काम नॉर्मल अंदाज़ में जारी रखे। इससे रिएक्शन का मसला पैदा नहीं होता। इसके बाद यह मुमकिन हो जाता है कि आदमी अपनी एनर्जी को बे-नतीजा कामों में ज़ाया न करे, वह अपनी पूरी एनर्जी को सिर्फ़ नतीजा-ख़ेज़ कामों में सर्फ़ करे। वह तमाम मौजूदा इमकानात को अपने मिशन के हक़ में इस्तेमाल कर सके और अपने मक़सद के मुताबिक़ अपने मंसूबे को अंजाम तक पहुँचाए।

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

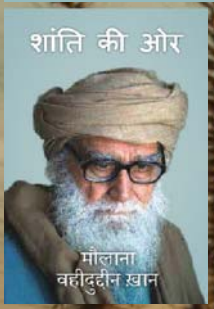

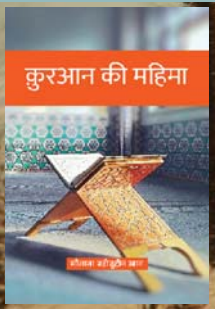

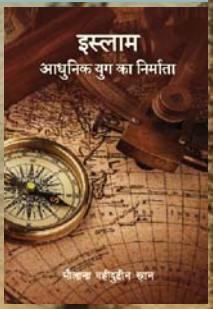

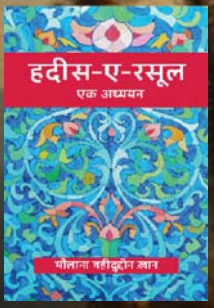

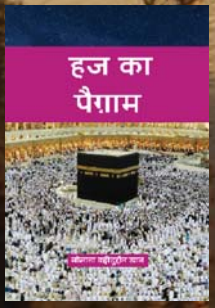

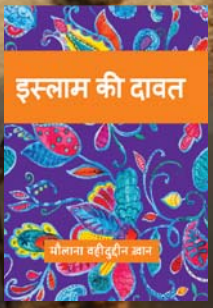

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

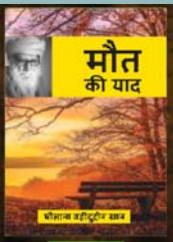

₹40/-

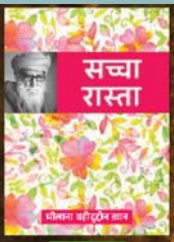

₹20/-

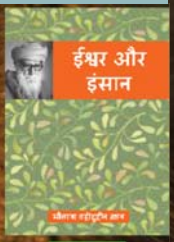

₹40/-

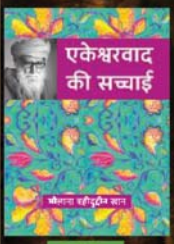

₹30/-

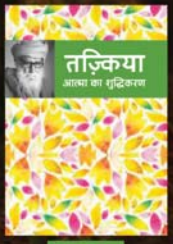

₹45/-

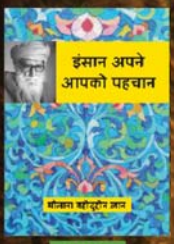

₹20/-

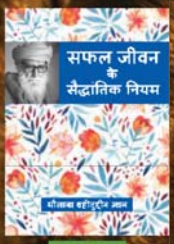

₹40/-